महाकवि श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचित

नलचम्पूः

(दमयन्ती-कथा)

प्रथम उच्छ्वासः

[सरल हिन्दी-संस्कृत-टीका, कवि-समालोचना, कथासार, छन्द-परिचय आदि सहित]

सम्पादक व टीकाकार :

डा० रामनाथ वेदालङ्कार
एम० ए०, पी-एच० डी०
संस्कृत-विभागाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रकाशक

साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार, मेरठ-२

प्रारम्भिक शब्द
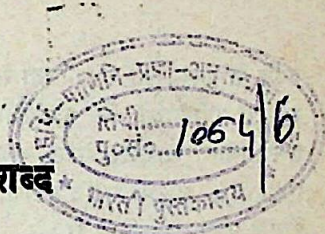
वैदिक कविता के पश्चात् महामुनि वाल्मीकि से जिस लौकिक काव्य का प्रादुर्भाव हुआ उसकी श्रीवृद्धि व्यास, कालिदास, भवभूति, बाण प्रभृति अनेक महाकवि समय-समय पर करते रहे हैं, जिससे संस्कृत साहित्य परम गौरवान्वित हुआ है। इन्हीं साहित्योपासक महाकवियों में एक स्वनामधन्य महाकवि त्रिविक्रमभट्ट हैं। चम्पूकाव्य की श्रेणी में इनके नलचम्पू काव्य ने प्रचुर ख्याति प्राप्त की है। काव्यपिपासु रसिकजन इनके काव्य से अतिशय चमत्कृत होते हैं। इनके काव्य का लक्ष्य है सभंगश्लेष की चातुरी द्वारा नल-दमयन्ती-कथा का वर्णन। सभंगश्लेष की सफल रचना एक दुष्कर कार्य है। कवि ने स्वयं कहा है कि यह मेरा प्रयत्न छोटी सी बाहुओं से दुर्गम समुद्र को तैरने का उपक्रम करने के समान है, परन्तु वस्तुतः कवि अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं। मर्मज्ञ समालोचकों ने एक स्वर से इनके श्लेषों को सराहा है।

सामान्यतः श्लेष से कविता कठिन हो जाती है, परन्तु इनके श्लिष्टोपमा, श्लिष्ट विरोधाभास, श्लिष्ट परिसंख्या आदि के प्रकरणों को साहित्यप्रेमी ऐसा आनन्द लेकर पढ़ते हैं, जैसे वे सादी, स्वाभाविक, प्रासादिक कविता को पढ़ रहे हों, नलचम्पू में जैसे सरस, प्रसन्न, मंजुल तथा चमत्कारजनक श्लेष मिलते हैं वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। त्रिविक्रम से पूर्व सुबन्धु ने प्रत्यक्षरश्लेषमयी 'वासवदत्ता' की रचना की थी, परन्तु उनके श्लेषों में पाण्डित्य का ही निर्वाह अधिक हुआ है और वे दुरूह तथा जटिल हो गये हैं।

त्रिविक्रम के गद्य और पद्य दोनों में ही रम्यता, सजीवता और नूतनता है।

कवि के काव्य की कमनीयता से आकृष्ट होकर कई विश्वविद्यालयों ने अपनी संस्कृत-परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में नलचम्पू को स्थान दिया है। आगरा, इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ, गुरुकुल कांगड़ी प्रभृति विश्वविद्यालयों की संस्कृत एम० ए०, शास्त्री आदि परीक्षाओं में इसका प्रथम उच्छ्वास निर्धारित है। केवल प्रथम् उच्छ्वास से भी कवि की अद्भुत प्रतिभा का परिचय छात्र पा सकते हैं। नलचम्पू का अनुशीलन संस्कृत भाषा की एक विशेष शैली छात्रों को हृदयंगम कराता है।

नलचम्पू की कोई सरल, सुबोध, छात्रोपयोगी टीका न होने से छात्रों के मार्ग में कठिनाई बनी हुई थी। श्री चण्डपाल कृत विषमपद-प्रकाश नामक संस्कृत-टीका एक उत्तम टीका है तथा उसमें अर्थबोध में पर्याप्त सहायता भी मिलती है, तो भी कुछ दुरूह होने से तथा केवल क्लिष्ट स्थलों पर होने से वह छात्रों के लिये अधिक उपकारक नहीं है। अतः परीक्षार्थियों के लाभार्थ प्रथम उच्छ्वास की इस हिन्दी-संस्कृत-टीका का प्रथम संस्करण सन् १९६४ में प्रस्तुत किया गया था। यह इसका चतुर्थ संस्करण है। इसमें व्याख्या-भाग में कहीं-कहीं स्वल्प परिवर्तन किये गये हैं। संस्कृत-व्याख्या में अलङ्कारों का प्रदर्शन पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत कर दिया है। पहले संस्करण में भूमिका संस्कृत में थी तथा अपेक्षाकृत छोटी थी। अध्यापकों तथा छात्रों के परामर्श का आदर करते हुए इस संस्करण में विस्तृत भूमिका हिन्दी में दे दी गई है, जिसमें चम्पू-काव्य तथा त्रिविक्रम भट्ट एवं नलचम्पू के सम्बन्ध में प्रमुख आलोचनात्मक सामग्री आ गई है; आशा है यह चतुर्थ संस्करण छात्रों के लिये अधिक उपयोगी हो सकेगा। पुस्तक में शीघ्रतावश कहीं-कहीं मुद्रण की अशुद्धियाँ रह गई हैं, जिन्हें पाठक अनायास स्वयं शुद्ध कर सकेंगे।

अन्त में मैं साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ के अध्यक्ष मित्रवर श्री पं० रतिराम शास्त्री जी का हृदय से धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने इस टीका के प्रकाशन का भार स्वीकार करने की कृपा की। इस चतुर्थ संस्करण के निकालने का सारा श्रेय भी उन्हीं को है।

१० सितम्बर, १९७५
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

—रामनाथ वेदालङ्कार

चतुर्थ संस्करण के सम्बन्ध में—

नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास के चतुर्थ संस्करण को विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। तृतीय संस्करण के स्वल्प समय में ही समाप्त होने एवं चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन से ही इस पुस्तक की उपादेयता एवं लोकप्रियता व्यक्त होती है।

आशा है कि यह संस्करण भी विद्यार्थियों के लिये अधिक उपयोगी होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

भूमिका

चम्पू की परिभाषा

काव्य दो प्रकार के होते हैं—दृश्य तथा श्रव्य। जो रंगमंच पर अभिनीत किये जाते हैं वे नाटक आदि रूपक एवं उपरूपक दृश्य काव्य कहाते हैं। जिनका अभिनय नहीं होता, प्रत्युत जो केवल पठन-श्रवण द्वारा आनन्द प्रदान करते हैं वे श्रव्य काव्य की श्रेणी में आते हैं। श्रव्य काव्य गद्य, पद्य तथा मिश्र त्रिविध होते हैं। चम्पू वह श्रव्य काव्य है, जिसमें गद्य और पद्य का मिश्रण रहता है[1]। किन्तु गद्य-पद्य-मिश्रित श्रव्य काव्य चम्पू से अतिरिक्त भी होते हैं, जैसे 'विरुद'[2] जिसमें राजस्तुति होती है, तथा 'करम्भक',[3] जो विविध भाषाओं में निर्मित होता है। चम्पू को उनसे भिन्न करने वाली वस्तु चम्पू की प्रबन्धात्मकता है।

कतिपय साहित्यशास्त्रियों ने गद्य-पद्य-मिश्रण के अतिरिक्त चम्पू में कुछ अन्य बातों का होना भी बताया है। हेमचन्द्र का कथन है कि चम्पू काव्य साङ्क तथा सोच्छ्वास होता है[4]। जैसे नलचम्पू उच्छ्वासों में विभक्त है तथा उसके प्रत्येक उच्छ्वास का अन्तिम पद्य 'हरचरणसरोज' पद अंकित होने के कारण वह साङ्क भी है। परन्तु ये लक्षण सभी चम्पुओं में नहीं पाये जाते। अधिकांश चम्पू साङ्क नहीं हैं तथा सबका विभाजन भी केवल उच्छ्वासों में न होकर स्वतक, उल्लास, काण्ड, तरंग, सर्ग, विलास, कल्लोल आदि में भी उपलब्ध होता है।

---

१. गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। सा० द० ६·३३६।

२. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। वही, ६·३३७।

३. करम्भकं तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम्। वही।

४. गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः। हेमचन्द्रः काव्यानुशासन ८·९।

चम्पू शब्द गत्यर्थक चपि धातु से निष्पन्न हुआ कहा जाता है। गति से यहाँ योजन क्रिया अभिप्रेत हो सकती है—'चम्पयति योजयति गद्यपद्ये इति चम्पूः' श्री हरिदास भट्टाचार्य के मतानुसार सहृदयों को चमत्कृत करके पवित्र करने वाला काव्य चम्पू है—'चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयतीति चम्पूः'। चम्पू में गद्य-पद्य के मिश्रण का अनुपात क्या हो यह निश्चित नहीं है। नलचम्पू आदि कुछ चम्पुओं में गद्य भाग अधिक पाया जाता है, तो चम्पूभारत आदि इतर चम्पुओं में पद्य भाग अधिक देखने में आता है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि चम्पू में भावात्मक विषय पद्य में तथा वर्णनात्मक विषय गद्य में रहता है। किन्तु सभी चम्पूकारों ने इसका ध्यान नहीं रखा है, अतः यह नियम नहीं माना जा सकता। दोनों प्रकार के विषय गद्य-पद्य दोनों में चम्पू के लेखकों ने उपन्यस्त किये हैं। चम्पू में गद्य-पद्य का मिश्रण इस दृष्टि से किया जाता है कि उसमें दोनों की रमणीयता मिलकर अधिक चमत्कारजनकता आ सके। पद्य से मिश्रित गद्य वैसा ही आह्लाददायक होता है, जैसे वाद्य से मिश्रित गीत।[1]

चम्पू काव्य की परम्परा

गद्य-पद्य-मिश्रित रचना वैदिक काल से ही की जाती रही है। संहितायें, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद्, जातककथा आदि सब में इस शैली के दर्शन होते हैं। तथापि ऐसी मिश्र रचना जिसे सर्वाङ्ग चम्पूकाव्य कहा जा सके दसवीं ई० शती से पूर्व उपलब्ध नहीं होती। प्रथम चम्पू नलचम्पू ही है, जो १०वी शताब्दी के आरम्भकाल में रचा गया, तदनन्तर १५वीं ई० शताब्दी तक चम्पुओं का विकास बहुत मन्थर गति से हुआ है। इस काल के चम्पुओं में यशस्तिलकचम्पू, जीवन्धरचम्पू, रामायणचम्पू, भारतचम्पू आदि प्रसिद्ध हैं। यशस्तिलकचम्पू के रचयिता जैन कवि सोमप्रभ सूरि हैं। इन्होंने इसकी रचना लगभग ९५९ ई० में की थी। इसमें अवन्ति के राजा यशोधर का चरित्र वर्णित है। यह एक धार्मिक काव्य है। प्रथम पाँच उच्छ्वासों में वस्तु का विकास हुआ है तथा

---

१. गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
—चम्पू रामायण, बालकाण्ड, ३।

शेष तीन उच्छ्वास जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। इसमें राजा यशोधर, उसकी पत्नी की कपटधूर्तता, राजा की मृत्यु, अनेक योनियों में जन्म और अन्त में जैन धर्म में दीक्षा का मनोरम वर्णन हुआ है। इसकी रचना-शैली बाण की कादम्बरी के आदर्श पर है। जीवन्धरचम्पू दिगम्बर जैन कवि हरिचन्द की रचना है, जो ग्यारह लम्भकों में समाप्त होती है। इसमें जैन राजकुमार जीवन्धर का चरित्र है। इसका काल ९०० से ११०० ई० के मध्य में है। गद्य तथा पद्य दोनों सरस हैं। यह भी बाण की गद्य-शैली पर रचित है तथा इसमें भी स्थान-स्थान पर जैन सिद्धान्तों के धर्मोपदेश हैं। रामायणचम्पू धारानरेश भोज का है, जो ११वीं ई० शती में लिखा गया था। इसका आधार वाल्मीकि रामायण है। भोज ने इसे किष्किन्धाकाण्ड तक ही लिखा था। युद्धकाण्ड की पूर्ति लक्ष्मण भट्ट ने तथा उत्तरकाण्ड की वेंकटराज ने की। वर्णन-चारुता की दृष्टि से इसमें हेमन्त, सन्ध्या, वर्षा ऋतु आदि वर्णन विशेष सुन्दर हैं। इस चम्पू में पद्यों का बाहुल्य है। अनन्तभट्टरचित भारतचम्पू (अनुमानतः १५वीं ई० शती) भी पर्याप्त प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है, जिसमें बारह स्तवकों में विस्तार से महाभारत की कथा वर्णित हुई है। १५वीं ई० शताब्दी तक के चम्पुओं में कुछ अन्य उदयसुन्दरीकथाचम्पू, भागवतचम्पू, भरतेश्वराभ्युदयचम्पू, पुरुदेवचम्पू आदि हैं।

१६वीं ई० शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग ढाई सौ वर्षों तक निरन्तर चम्पू काव्यों की रचना होती रही है। दो सौ से ऊपर चम्पू इसी काल में लिखे गये। डा० छविनाथ त्रिपाठी ने अपने शोधप्रबन्ध चम्पू काव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन में २४५ चम्पुओं का परिचय दिया है, जिनमें ७४ चम्पू प्रकाशित बताये गये हैं, शेष अप्रकाशित। मूल स्रोत अधिकांश चम्पुओं के रामायण, महाभारत तथा पुराण हैं। भोज का रामायण चम्पू, दिवाकर का अमोघराघव चम्पू, वेंकटाध्वरि का उत्तररामचरित चम्पू आदि रामायण पर आधारित चम्पू हैं। त्रिविक्रमभट्ट का नलचम्पू, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू, नारायण कवि का राजसूयप्रबन्ध, चक्र कवि का द्रौपदीपरिणय चम्पू आदि महाभारताश्रित चम्पू हैं। अभिनव कालिदास का भागवत चम्पू, कवि कर्णपूर

का आनन्द वृन्दावन चम्पू, जीवराज का गोपाल-चम्पू, श्रीकृष्ण का मन्दारमरन्द चम्पू, मित्रमिश्र का आनन्दकन्द चम्पू, शेष कृष्ण का पारिजातहरण चम्पू, दैवज्ञ का नृसिंह चम्पू आदि पुराण कथाओं से सम्बन्धित चम्पू हैं। सोमप्रभ सूरि का यशस्तिलक चम्पू, हरिचन्द्र का जीवन्धर चम्पू एवं आशाधर का भरतेश्वराभ्युदय चम्पू जैन सम्प्रदाय के चम्पू हैं। सोड्ढल का उदयसुन्दरीकथा चम्पू आदि कतिपय चम्पू काल्पनिक कथाओं पर आश्रित हैं। वेंकटाध्वरि का विश्वगुणादर्श चम्पू, समरपुंगव दीक्षित का यात्राप्रबन्ध चम्पू प्रभृति कुछ चम्पू यात्रावर्णनात्मक हैं जिनमें विविध भौगोलिक दृश्यों एवं तीर्थादि का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है।

नलचम्पूकार त्रिविक्रम भट्ट

नलचम्पू में त्रिविक्रमभट्ट ने अपना जो परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि इनका जन्म शाण्डिल्य गोत्र के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज सांगवेदाध्यायी, शुचि, सत्यवक्ता, ब्रह्मवर्चस्वी, यज्ञनिष्ठ एवं अर्चनीय आचार वाले थे। वे महाभारत की कथा बांचते थे। राजाश्रय में रहना इन्हें रुचिकर नहीं था। इनके पितामह का नाम श्रीधर तथा पिता का नाम नेमादित्य या देवादित्य था। अपनी माता का नाम इन्होंने नहीं लिखा।

प्रसन्नता का विषय है कि त्रिविक्रम का काल अन्धकार में नहीं है। नलचम्पू के प्रथम उच्छ्वास में पुरातन कवियों के स्तुतिप्रसंग में इन्होंने कादम्बरी के रचयिता बाणभट्ट को स्मरण किया है।[1] अन्यत्र कादम्बरी के गद्यबन्धों की भी चर्चा की है[2]। बाण का समय सप्तम शताब्दी ई० सर्वविदित है। अतः त्रिविक्रम की स्थिति सप्तम शताब्दी से पूर्व नहीं हो सकती। ११वीं शताब्दी ई० के भोजराज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में नलचम्पू

१. शश्यद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः॥ नलचम्पू १·१४

२. कादम्बरी गद्यबन्धा इव दृश्यमान बहुव्रीह्यः केदाराः।
(नलचम्पू, उच्छ्वास १. श्लोक २६ से पूर्व)

का एक पद्य उद्धृत किया है[1]। अतः त्रिविक्रम ११वीं शताब्दी के पश्चात् नहीं हो सकते। एवं इनका काल ७ म तथा ११ श ई० शताब्दी के मध्य में होना चाहिये। यह काल कौनसा होगा इस विषय में हमें एक निर्णायक प्रमाण उपलब्ध हो जाता है। हैदराबाद राज्यान्तर्गत मान्यखेट ग्राम के अधीश्वर जयतुंग द्वितीय के पुत्र इन्द्रराज तृतीय का राज्याभिषेक ९१५ ई० को कुरुण्डक ग्राम में हुआ था, जहाँ अभिषेक के अनन्तर उनकी ओर से सुवर्णतुलादान तथा अनेक ग्रामों का दान किया गया था। इस वृत्त का सूचक एक ताम्रपत्र नवसारी ग्राम में उपलब्ध हुआ है, जिसके एक श्लोक में उसके रचयिता का नाम नेमादित्य का पुत्र त्रिविक्रम भट्ट लिखा है[2]। पितृनाम-साम्य से स्पष्ट है कि यह ताम्रपत्र नलचम्पू के प्रणेता त्रिविक्रम का ही लिखा हुआ है। अतः त्रिविक्रम का काल ९१५ ई० या १० म ई० शती का पूर्वभाग सिद्ध होता है। उक्त प्रसंग में त्रिविक्रम को 'इन्द्रराजाङ्घ्रिसेवी' भी कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि ये इन्द्रराज तृतीय की राजसभा के रत्न थे। इन्द्रराज के राज्याभिषेक से सम्बन्ध रखने वाले कुछ अन्य अभिलेख भी उपलब्ध हुए हैं। उनसे भी इनका उक्त काल ही पुष्ट होता है।

जैसे कालिदास दीपशिखा कवि, भारवि आतपत्र कवि एवं माघ घण्टा कवि नाम से प्रख्यात हैं, वैसे ही त्रिविक्रम 'यमुना त्रिविक्रम' नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने प्रभातवर्णन के एक श्लोक[3] में यह भाव प्रकट किया है कि उदयाचल पर प्राचीप्रभा का प्रकाश तथा अस्ताचल के शिखर पर अन्धकार छा जाने पर आकाश के बीचोंबीच प्रकाश अन्धकार का ऐसा मिश्रण हो रहा है मानो

---

१. पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतं गहनम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी॥

नलचम्पू ६.२९

२. श्री त्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना।
कृता शस्ता प्रशस्तेयमिन्द्रराजाङ्घ्रिसूनुना॥

३. नलचम्पू ६·१।

गंगा-यमुना का संगम हो रहा हो। इस कल्पना की रमणीयता से मुग्ध होकर सहृदय जनों ने इन्हें इस आख्या से भूषित कर दिया है।

त्रिविक्रम भट्ट की कृतियाँ

त्रिविक्रम की दो कृतियां प्रसिद्ध हैं, एक नलचम्पू दमयन्ती-कथा और दूसरी मदालसाचम्पू। इनके अतिरिक्त इनके रचित कुछ अभिलेख भी हैं, जिनका उल्लेख अभी ऊपर किया गया है, जिनमें इन्होंने अपने आश्रयदाता इन्द्रराज नृपति की प्रशस्ति लिखी है।

१. नलचम्पू—यह महाभारत के वनपर्व में आये नलोपाख्यान के आधार पर लिखा गया चम्पूकाव्य है। इसमें नल दमयन्ती की प्रणय-कथा निबद्ध है। आरम्भ के कुछ श्लोकों में कवि ने चन्द्रमौलि, कविवाग्विलास, कामदेव तथा सरस्वती के स्रोत की वन्दना करके सुकवि एवं सज्जनों की प्रशंसा तथा कुकवि एवं खलों की निन्दा की है। तदनन्तर अपने से पूर्ववर्ती वाल्मीकि, व्यास, बाण तथा गुणाढ्य कवियों की स्तुति करके अपना संक्षिप्त वंश परिचय दिया है। इसमें सात उच्छ्वास हैं। प्रति उच्छ्वास के अन्तिम पद्य में कवि ने 'हरचरण-सरोज' पद का प्रयोग किया है। अतः यह चम्पू हरचरणसरोजांक नाम से प्रसिद्ध है। कथावर्णन में कई प्रसंग कवि के स्वकल्पनाप्रसूत हैं। इसमें दमयन्ती कथा समाप्ति तक नहीं पहुँची है। "देवों या दूत बनकर नल इन्द्र के वर से अदृश्य रूप धारण कर कन्यान्त पुर में दमयन्ती का साक्षात्कार करता है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो वहाँ से लौट शिरीषकुसुमों की माला के समान कोमल शय्या पर बैठा पुनः पुनः उसी का चिन्तन करता हुआ सकल रात्रि व्यतीत कर देता है"—यहीं काव्य समाप्त हो जाता है। कथा की अपूर्णता के विषय में निम्न मनोरंजक किंवदन्ती प्रसिद्ध है—

"त्रिविक्रम बाल्यावस्था में निपट मूर्ख थे। इनके पिता नेमादित्य किसी राजा के सभा-पण्डित थे।। एक बार किसी कार्य से इनके पिता देशान्तर को गये हुए थे। तभी कोई दिग्विजयाकांक्षी पण्डित राजसभा में आया और उसने राजा से निवेदन किया कि अपने किसी पण्डित से मेरा शास्त्रार्थ कराइये, नहीं तो मुझे विजयपत्र दीजिये। राजा ने शास्त्रार्थ के लिये नेमादित्य को बुलाने

उसके घर दूत भेजा। नेमादित्य को अनुपस्थित देख दूत ने उसके पुत्र त्रिविक्रम को ही शास्त्रार्थ के लिये चलने को कहा। वह अपने को महामूर्ख देख संकट में पड़ गया और लाज बचाने के लिये सरस्वती की आराधना करने लगा। सरस्वती ने प्रसन्न हो उसे वर दिया कि जब तक तेरे पिता नहीं लौटते तब तक मैं तेरे मुख में निवास करूँगी। तब राजसभा में पहुँच उसने प्रतिपक्षी पण्डित से शास्त्रार्थ कर उसे परास्त किया। फिर उसने सोचा कि जब तक मेरे पिता नहीं लौटते तब तक सरस्वती मेरे मुख में वास कर ही रही है, क्यों न इतनी देर में मैं एक काव्य ही रच लूँ। यह उसने नलचम्पू लिखना ारम्भ कर दिया। अभी कथा सप्तम उच्छ्वास तक ही पहुँची थी कि पिता के वापिस आ जाने से काव्य अपूर्ण ही रह गया।"

कवि ने नलचम्पू में अपने पिता के गुणों की प्रशंसा करते हुए अपने आप को जाड्यपात्र तथा मन्दधी कहा है[1]। यह उसका विनयप्रदर्शन मात्र है, जैसे रघुवंश में कालिदास ने किया है[2]। पर प्रतीत होता है कि इसी उक्ति को लेकर किसी ने उपर्युक्त वृत्त गढ़ लिया है। काव्य में दमयन्ती कथा के अपूर्ण रहने के कई कारण हो सकते हैं। संभव है कवि ने समझा हो कि कथा अपूर्ण रहने पर भी मेरा चम्पूकाव्य लिखने का उद्देश्य पूर्ण हो गया है, क्योंकि गद्य-पद्य में सभंगश्लेष की जो चामत्कारिक शैली में उपन्यस्त करना चाहता था, वह सर्वांशतः हो चुकी है तथा अन्य भी काव्य के अङ्ग पूर्ण हो चुके हैं। वस्तुतः सभी विज्ञ समालोचकों ने यह स्वीकार किया है कि कथा अपूर्ण होते हुए भी नलचम्पू अपने आप में एक पूर्ण रचना है, जैसे बाण की कादम्बरी और हर्ष का नैषध अपूर्ण होते हुए भी पूर्ण हैं। अपनी सम्पूर्ण काव्यकला प्रदर्शित कर चुकने के पश्चात् कवि के लिये काव्य को आगे बढ़ाने का विशेष प्रयोजन अवशिष्ट नहीं रह जाता, विशेषकर उस अवस्था में जब कथा पाठकों की पूर्व-परिचित हो तथा कवि ने शैली विस्तार की अपनायी हो, जिसमें कथांश स्वल्प

---

१. नलचम्पू १·२०, २१।

२. 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।'
'मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।' रघु० १·२, ३।

आता हो। शेष कथांश वह पाठकों के सम्मुख व्यञ्जना के लिये छोड़ देता है। यह भी हो सकता है कि कवि के समक्ष रुग्णता, कार्यान्तर आदि का कोई विघ्न आ गया हो, जिसके कारण उसे कथा को यहीं विराम देना हो।

२. मदालसाचम्पू—यह भी त्रिविक्रम की रचना मानी जाती है। इसमें कुवलयाश्व और मदालसा की प्रणयकथा है, जो मार्कण्डेय पुराण पर आधारित है। यह उल्लासों में विभक्त है तथा नलचम्पू के समान श्लेषप्रचुर नहीं है। कुवलयाश्वचरित, पातालकेतु का वध, मदालसा-परिणय, मदालसा से वियोग; उसकी पुनः प्राप्ति आदि इसमें वर्णित हैं। यद्यपि भाषा-सौष्ठव और काव्यकला की दृष्टि से नलचम्पू जैसी रमणीयता इसमें प्राप्त नहीं होती, तो भी कथा के आकर्षण आदि के कारण यह कृति भी सहृदय श्लाघ्य रही है।

३. इन्द्रराज-प्रशस्ति—त्रिविक्रम ने अपने आश्रयदाता मान्यखेटाधीश्वर इन्द्रराज तृतीय के राज्याभिषेक की प्रशस्तियाँ लिखी थीं, जो ताम्रपत्रों पर लिखी उपलब्ध हुई हैं, यह ऊपर कहा जा चुका है। एक ताम्रलेख नवसारी प्रदेश से प्राप्त हुआ था। एक और अभिलेख हत्तिमत्तूर (धारवाड़) में ९१६ ई० का लिखा मिला है। अन्य अभिलेख भी गुजरात और महाराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं। इन सब में रचयिता का नाम नेमादित्यसूनु त्रिविक्रम भट्ट ही लिखा है। इन प्रशस्तियों में भी श्लेष पाया जाता है। उदाहरणार्थ एक श्लोक निम्न है—

कृतगोवर्धनोद्धारं हेलोन्मूलितमेरुणा।
उपेन्द्रमिन्द्रराजेन जित्वा येन न विस्मितम्॥

इसमें इन्द्रराज तृतीय द्वारा मेरुनगर (कन्नौज) के राजा पर की गई विजय का वर्णन है। एक अर्थ कृष्ण तथा इन्द्र के पक्ष में लगता है, दूसरा अर्थ मेरुनगर के राजा तथा इन्द्रराज तृतीय के पक्ष में।

नलचम्पू की कथा

प्रथम उच्छ्वास—आर्यावर्त नाम का एक देश है, जहाँ निषध नाम के प्रसिद्ध जनपद में अत्यन्त रमणीय निषधा नाम की एक पुरी है। वहाँ वीरसेन का पुत्र, अनेक गुणों से समन्वित नल नाम का राजा राज्य करता था। सालंकायन का पुत्र श्रुतशील उसका मन्त्री था। उस पर राज्य का समस्त भार छोड़ स्वयं सांसारिक सुखों को भोगते हुए राजा के दिन व्यतीत होने लगे।

इतने में ही सुहावनी वर्षा ऋतु आ गई। एक दिन आखेट-वन के रक्षक ने आकर महाराज को सूचित किया कि कहीं से एक विशाल शरीर वाला शूकर आ गया है। वह आखेट-वन में तरह-तरह के उत्पात मचा रहा है। राजा ने जब यह सुना तब वह बाहुक नाम के सेनापति से शिकार की सब तैयारी करवा शिकारियों सहित उस वन में जा पहुँचा। वहाँ सब वन्य जन्तु घेरे जाने लगे। इतने में ही अचानक वह शूर शूकर दिखाई पड़ा। जैसे-तैसे उसे जीतकर थककर चूर हुआ राजा एक सालवृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। तभी अकस्मात् वहाँ एक पथिक आया। राजा ने उसे कहा कि आपने भ्रमण करते हुए अनेक आश्चर्यजनक घटनायें देखी होंगी, कोई अपूर्व घटना सुनाइये।

इस पर पथिक ने समीप बैठ सुनाना आरम्भ किया—"दक्षिण दिशा के मुख का तिलकभूत विदर्भ नाम का एक सुरम्य देश है। वहाँ की प्राकृतिक सुषमा अनोखी है। मृगनयनी रसिक स्त्रियों की वह निधि है। वहाँ मैं गन्धमादन पर्वत पर स्थित भगवान् स्कन्द देव का दर्शन करने गया था। वहाँ से लौटते समय मार्ग में थककर एक वटवृक्ष के नीचे ठहरा। इतने में ही अत्यन्त सुन्दरी कोई राजकन्या अपनी प्रौढ़ सखियों सहित वहाँ आई। मैं उसके सौन्दर्य से विमूढ़ हो सोचने लगा कि यह साक्षात् लक्ष्मी या पार्वती ही तो नहीं है। उसी वटवृक्ष के नीचे उसकी एक उत्तरवासी पथिक से भेंट हुई जो दक्षिण दिशा की ओर जा रहा था। जैसे आपने मुझसे कोई अपूर्व वार्ता सुनाने का आग्रह किया है, वैसे ही राजपुत्री ने उस पथिक से किया। पथिक उसके सम्मुख किसी उदीच्य राजा की प्रशंसा करने लगा। मैंने उसका केवल

अन्तिम भाग सुना है। उस राजा के सौन्दर्य का बखान कर उसने कहा कि तू सर्वथा उसके योग्य है। मैं भी विस्मय के कारण अपना विवेक खो बैठा था, जो कि मैंने उस राजकन्या के विषय में कुछ भी नहीं पूछा कि वह कौन है, किसकी पुत्री है, कहाँ से आई है, कहाँ जा रही है। आपने कोई अपूर्व बात सुनाने को कहा था, वह मैंने सुना दी। मेरा तो उस दिशा में उस राजकन्या को तथा इस देश में आपको देखकर जन्म सफल हो गया है। अब मुझे जाने की अनुमति दीजिये।"

पथिक के मुख से यह वृत्तान्त सुन राजा उस राजकन्या के प्रति अनुरक्त हो चला। वह सोचने लगा आश्चर्य है कि मैंने कभी उसका रूपवैभव देखा नहीं, तो भी लोहा जैसे चुम्बक की ओर खिचता है, वैसे ही मेरा मन अधीर हो उसकी ओर आकृष्ट हो रहा है? अन्त में अपने सब आभूषण उतार उसने पथिक को दे दिये तथा कुछ देर और वार्तालाप करके किसी प्रकार उसे विदा किया। स्वयं भी शिकारियों सहित राजा अपने निवास-स्थान को लौट आया। तब से लेकर उस राजकन्या के प्रति वह उत्सुक रहने लगा। वह पुनरपि पथिकों से उसका वृत्तान्त पूछता रहता था। इस प्रकार उसके वर्षा ऋतु के दिन व्यतीत होने लगे।

द्वितीय उच्छ्वास—शनैः शनै, वर्षा ऋतु समाप्त होने पर शरदवधू ने पदार्पण किया। तभी नल ने समीपस्थ वन में विहार करने वाले किन्नरमिथुन द्वारा गाये जाते हुये तीन श्लोक सुने, जिनमें शरद् की शृङ्गारोद्दीपकता का वर्णन था। उन्हें सुन उसका मन तरङ्गित हो उठा और वह भ्रमरों की मधुर झङ्कार से रमणीय उस उद्यान की ओर चल पड़ा। मध्य में उसे एक वनपालिका मिली, जिसके मुख से श्लिष्ट वाणी में सुरम्य वनशोभा का वर्णन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे पारितोषिकस्वरूप अपने अङ्गों के आभूषण उतार कर दे दिये। तदनन्तर वह सर्वर्तुनिवास नामक अति रमणीय वन में घूमने लगा। उसी समय वहाँ अचानक श्वेत कमल सदृश धवल पंखों वाले राजहंसों की मण्डली आकाश से उतरी। राजा विस्मयस्तिमित नेत्रों से उसे देखता ही रह गया। हंसों ने कमल-नालों को खाना, इधर-उधर उड़ना और

विचरना शुरू कर दिया। राजा ने लीलापूर्वक उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा और उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। हाथों में आते ही उसने मधुर स्वर में स्वस्ति कह कर अत्यन्त विस्पष्ट शब्दों में राजा की स्तुति के श्लोक बोले। हंस की निर्भीकता, आश्चर्यजनक रूप, वाङ्माधुर्य, प्रज्ञा, अर्थ की उदारता, स्पष्ट वर्ण-व्यक्ति आदि देखकर राजा सोचने लगा कि निश्चय ही यह पक्षी के वेष में कोई देवता है। यह सोच उसने हंस से स्वागत प्रश्न किया। उत्तर में हंस ने कहा—'महाराज, आपके दर्शन से जो मुझे आनन्द हुआ है उसी से मेरा स्वागत हो गया।' हंस की इस उक्ति से राजा और भी रंजित हुआ। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा हुआ देख आँखों से आँसू बहाती हुई हंसवधू ने दूर से ही राजा को देखकर चांदी की घंटी टंकार के समान कोमल वाणी से दो श्लोक पढ़े, जिनमें श्लेषपूर्वक हंस के पकड़ने पर राजा को उलाहना दिया गया था। नल ने भी श्लिष्ट वाणी में उसका उतर दिया। तब हंस ने राजा से कहा कि तुम व्यङ्ग्य वचनों से मेरी प्रिया को प्रकुपित न करो। इन तीनों का वार्तालाप चल ही रहा था कि इतने में आकाशवाणी हुई—'हे राजन्; शीघ्र ही इस हंस को छोड़ दीजिए, यह दमयन्ती को आपकी ओर आकृष्ट करने में आपका दूत होगा।"

दमयन्ती नाम सुनते ही राजा को रोमाञ्च हो आया। 'यह दमयन्ती कौन है, यह आश्चर्यजनक पक्षी कौन है, यह आकाशवाणी कैसी है', यह सब विस्तार से जानना चाहिए, यह सोच लता-मण्डल की छाया में एक शिलातल पर बैठ हंस से उसने दमयन्ती का वृत्तान्त सुनाने का आग्रह किया। हंस ने जो वृत्तान्त उसे सुनाया उसका सार यह था—

दक्षिण देश में कुण्डिन नाम का एक नगर है। वहाँ के राजा भीम हैं। उनकी रानी प्रियंगुमञ्जरी है। इनके कोई सन्तान नहीं थी। एक दिवस वन में विहार करते समय बन्दरी के बच्चे को देख इन्हें अपने निःसन्तान होने का बड़ा दुःख हुआ। राजा ने पत्नी को सन्तान-प्राप्ति के लिये कामवर्षी भगवान् शंकर की आराधना करने के लिये कहा। इतने में सन्ध्या-काल आ गया। गगन में चन्द्रमा उदित हुए। प्रियंगुमञ्जरी ने शंकर और चन्द्रमा दोनों

को नमस्कार किया और वह शंकर के चरण-युगल की आराधना करती हुई पवित्र कुशा की शय्या पर सो गई।

तृतीय उच्छ्वास—सुखपूर्वक सोयी हुई प्रियंगुमञ्जरी ने निशावसान में स्वप्न देखा—"भगवान् शंकर चन्द्रमण्डल से उतर कर कह रहे हैं कि हे पुत्रि, लो यह पारजात की मञ्जरी ले लो, डरो नहीं। प्रभात में मेरे आदेश से दमनक मुनि आयेंगे और तुम पर अनुग्रह करेंगे। यह कह कर वे मञ्जरी दे देते हैं। वह भी उसे प्रभु का प्रसाद समझ ग्रहण कर लेती है।" प्रातः मांगलिक बाजों की ध्वनि के साथ उठकर उसने भगवान् सूर्य की स्तुति की। इधर महाराज भीम भी प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन कर पुरोहित को आगे कर उससे मिलने अन्तःपुर पहुँचे। उन्होंने रानी का मुख कमल के समान खिला देख जान लिया कि इन्दुमौलि ने इस पर अनुग्रह किया प्रतीत होता है। रानी ने भी स्वप्न का सारा वृत्तान्त राजा को सुना दिया। तब राजा ने कहा कि मैंने भी आज स्वप्न में गणेश, कार्तिकेय एवं पार्वती सहित भगवान् शंकर को देखा है। तो ब्राह्मण दोनों स्वप्नों का फल बतायें, यह कह पुरोहित की ओर संकेत किया। पुरोहित बोला—'महाराज, आप बड़े भाग्यशाली हैं। अवश्य ही महारानी यश से समस्त भुवन को धवलित करने वाली सन्तान प्राप्त करेंगी।' इतने में ही सूर्यमण्डल के मध्य से एक मुनि उतरे जो सदाचार के सदन, श्रुतियों के आश्रय, महिमा की भूमि और साधुता के सिन्धु प्रतीत होते थे। दमनक उनका नाम था। राजा ने दूर से ही उन्हें आता देख विस्मित हो, आसन से उठ, कुछ कदम आगे बढ़, नतमस्तक हो प्रणाम किया तथा उन्हें उच्च स्वर्णासन पर बैठाया। स्वागत के अनन्तर आगमन का कारण पूछने पर मुनि बोले—'हम भगवान् चन्द्रचूड के आदेश से यह सूचित करने आये हैं कि आप एक असामान्य कन्यारत्न को प्राप्त करेंगे।' जब रानी ने यह सुना तो वह बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उसे तो पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा थी। वह बोली 'यह कन्या प्राप्ति का वरदान आप अपने ही पास रखिये।' तब मुनि बोले—हे चन्द्रमुखि मुझे व्यर्थ क्यों उपालम्भ देती हो? भगवान् शम्भु ही सब प्राणियों से शुभाशुभ को देखकर तुलाधर के समान तोल-तोल कर फल देते हैं।'

इस पर रानी ने उनसे क्षमा मांगी और उन्हें विविध आभूषण, रेशमी वस्त्र, माला आदि देने लगी। पर मुनि यह कहकर उन्हें बिना स्वीकार किये ही आकाश में उड़ गये कि ये सब वस्तुएं आप लोगों को ही शोभा देती हैं, हमें नहीं।

कालक्रम से प्रियंगुमंजरी गर्भवती हुई। यथासमय उसने कन्यारत्न को जन्म दिया। नामकरण के समय राजा ने दमनक मुनि के वर को स्मरण कर कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा। शनैः शनैः वह माता-पिता के हृदय को तरंगित करती हुई बाल्य-लीलायें करने लगी। शीघ्र ही उसने कन्याजनोचित गीत, वाद्य, कुलाचार आदि में नैपुण्य प्राप्त कर लिया। अब उसका शरीर मनोहारी यौवन के अवतार से अलंकृत हो उठा है। वह ऐसी सुन्दर हो गयी है कि पड़ी हुई युवकों की दृष्टि उस पर से किसी प्रकार हटती नहीं है। इस प्रकार दमयन्ती के सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा कर हंस चुप हो गया।

चतुर्थ उच्छ्वास—हंस के मुख से दमयन्ती का वर्णन सुनकर राजा काम-मोहित हो सोचने लगा कि निश्चय ही यह सुन्दरी वही है, जिसके विषय में मैंने पथिक के मुख मे सुना था। यह विचार कर हँसता हुआ वह हंस से बोला—'हे, प्रिय तुम्हारे वचनामृत से मैं तृप्त हो गया हूँ। मैंने आज श्रोतव्य को सुन लिया है। अब मैं समुचित दैनिक कृत्य के लिये जाता हूँ।' तुम भी स्वेच्छापूर्वक क्रीडावापी की परिसर-भूमियों में विहार करो।' और वनपालिका को कहा कि जब यह हंस कमलमालाओं में विहार कर चुके तब इसे लेकर भोजनोपरान्त विश्रामगोष्ठी में स्थित मेरे पास आना। यह कह राजा राजभवन को चला गया।

राजा के चले जाने पर हंस स्वादु कमलिनियों का आस्वादन कर विलासपूर्वक तरंगों में देर तक क्रीडा करता रहा। उसने सोचा कि अब फिर राजा के पास मैं ले जाया जाऊँगा तो कहीं वह मुझे पिंजरे में कैद न कर ले। इसलिये वह अन्य राजहंसों के साथ आकाश में उड़ चला। शीघ्र ही सब हंस विदर्भ देश के अलंकारभूत कुण्डिनपुर पहुँचे और राजभवन के पास कन्यान्तःपुर के क्रीड़ोद्यान-सरोवर में उतर पड़े. जब दमयन्ती को यह पता लगा तब

तुरन्त वह अति कौतुक में उन्हें देखने वहाँ आयी और नलिनीवन में विहार करते हुए एक-एक को पकड़ने के लिये अपनी सखियों को आदेश दिया। स्वयं उसने विस्मयकारी उसी राजहंस को अपने करपल्लव में ले लिया। हंस ने चित्त को चमत्कृत करने वाली उसकी कान्ति से ही समझ लिया कि वही दमयन्ती है और उसे आशीर्वाद दिया कि तुम परम सुन्दरी, दीर्घायु और सुखी रहो तथा सुन्दर नल को पति के रूप में प्राप्त करो।

दमयन्ती को हंस की संस्कृतमय वाणी सुनकर बड़ा विस्मय हुआ। वह सोचने लगी कि जिस नल के विषय में इसने कहा है यह वही प्रतीत होता है जिसका वर्णन जब मैं गौरी महोत्सव के लिये जा रही थी परिचय देने के लिये कहा। हंस ने कहना प्रारम्भ किया—

'वीरसेन नाम का बड़ा प्रतापी, प्रजापालक निषध देश का राजा है। उसकी रूपवती नाम की अपनी पत्नी से पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम ब्राह्मणों ने नल रखा। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया क्रमशः उसके चूड़ाकरण आदि संस्कार हुए और शनैः शनैः वह समस्त विद्याओं में पारंगत हो गया। अब वह तरुण हो गया है और उसकी मुखकान्ति चन्द्रमा से स्पर्धा करती है। उसका सौन्दर्य नयनाभिराम हो गया है। श्रुतशील नाम का एक ब्राह्मण उसका मन्त्री और मित्र है। उसके पिता सालंकायन महाराज वीरसेन के मुख्य मन्त्री थे। एक दिन राज-दरबार में वीरसेन और सालंकायन दोनों उपस्थित थे। नल ने अपने पिता को प्रणाम किया सालंकायन को नहीं। उसके इस व्यवहार से सालंकायन को दुःख और क्रोध हुआ। वे नल को राजपुत्रोचित बहुविध उपदेश देने लगे। पिता ने भी मन्त्री की बातों का भी समर्थन किया और राजपाट नल को सौंप स्वयं वन जाने की इच्छा प्रकट की। ज्योतिषियों ने बताया कि अभिषेक के लिये आज का दिन ही शुभ मुहूर्त है। तभी अकस्मात् आकाश से कुछ मुनिगण उतरे जिनके हाथों में समस्त तीर्थों का जल तथा अभिषेक योग्य सब सामग्री विद्यमान थी। धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। वीरसेन पत्नी सहित वन को चले गये। सालंकायन भी अपने पुत्र श्रुतशील को नल का मन्त्री बनाकर वीरसेन के पथानुगामी हुये। नल पितृवियोग से

विह्वल रहने लगे। जैसे तैसे परिजनों द्वारा विविध विनोदों से मन बहलाव किये जाते हुये वे दिन व्यतीत कर रहे।'

पञ्चम उच्छ्वास—हंस की बातें सुनकर दमयन्ती नल के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो उठी। उसकी परिहासशीला नाम की एक सखी थी। वह हँस कर बोली—'हमारे श्रोत नल के गुण वर्णन को सुनते सुनते अभी तृप्त नहीं हुए हैं, तो तुमने कथा का विराम क्यों कर दिया और भी नल के विषय में हमें बताओ। तब हंस ने नल की कुछ अन्य भी प्रशंसा की और कहा कि दमयन्ती नल के सर्वथा योग्य है। जब हंस जाने लगा तब परिहासशीला ने उससे कहा—'हे महानुभाव' जैसे मेरी इस सखी के अन्दर अपनी उक्तियों से नल के प्रति आपने अनुराग उत्पन्न किया है, वैसे ही नल के मन में उत्पन्न करना, क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती। दमयन्ती ने अपना हार उतार कर हंस के गले में पहना दिया। हंसमण्डली आकाश में उड़ चली। दमयन्ती सोचने लगी कि मेरे भी विधाता पंख क्यों नहीं लगा देता, जिससे मैं उड़कर चली जाऊँ और नल के दर्शन करूँ। तब से वह नल के प्रति उत्कण्ठित रहने लगी।

इधर वे हंस मार्ग में सरोवर के सलिल में विहार करते हुये, पर्वत-नगर-ग्राम आदि को लांघते हुये कुछ दिनों में निषधा नगरी के उद्यान में जा पहुँचे और स्वच्छन्द क्रीडा करने लगे; राजा को सरोवर की रक्षिका ने जाकर सूचना दी। इतने में ही वनपालिका एक राजहंस को पकड़ कर राजा के पास ले गयी। यह वही हंस था जिससे पहले राजा की बातचीत हुई थी। राजा ने मुग्ध मुस्कराहट से उसका स्वागत किया। उसने भी दमयन्ती से अपने मिलने का सारा वृतान्त सुना दिया और दमयन्ती की दी हुई मुक्तमाला अपने गले से उतार कर नल को दे दी। नल ने उसे बड़ी स्पृहा के साथ देख अपने कण्ठ में पहन लिया और हंस के दमयन्ती विषयक अनेक समाचार सुनते-सुनते उसके शरद् ऋतु के दिन बीतने लगे। एक दिन हंस राजा से विदा लेकर चला गया। उसके चले जाने पर नल दमयन्ती के प्रति और भी अधिक उत्सुक रहने लगा। दमयन्ती की भी यही दशा थी।

दमयन्ती की यौवनावस्था देख महाराज भीम ने स्वयंवर का आयोजन किया। सब दिशाओं में राजाओं को आमन्त्रित करने दूत भेजे गये। जो वृद्ध

ब्राह्मण दूत बनकर उत्तर की ओर जा रहा था उसे श्लिष्ट वाणी में दमयन्ती ने नल को अवश्य लाने के लिये कहा। निमन्त्रण पाकर नल तत्काल सेना लेकर विदर्भ देश की ओर चल पड़ा। कुण्डिनपुर तक पहुँचने का मार्ग बड़ा रमणीक था। पर्वत, ग्राम आदि को लांघता हुआ वह शीघ्र ही विन्ध्याचल पहुँच गया। श्रुतशील ने बहुत प्रकार से विन्ध्यस्थलियों की रमणीयता उसके सम्मुख वर्णित की। एक दिन उन्होंने वहीं नर्मदा के किनारे विश्राम किया।

इतने में ही गगन में एक अपूर्व गतिध्वनि सुनायी दी और सुभग वायु बहने लगी। अम्बरतल से उतरते हुये एक निर्निमेष पुरुष को राजा ने देखा, पास आकर उस पुरुष ने राजा से निवेदन किया कि महाराज, शीघ्र ही अर्घ्य के लिये तैयार हो जाइये, यम-वरुण-कुबेर आदि से अनुसृत स्वर्गाधिपति इन्द्र आपके पास आ रहे हैं। उनके पहुँचने पर राजा ने सबका यथोचित सत्कार किया। तब इन्द्र का संकेत पाकर कुबेर ने आने का प्रयोजन बताया कि विदर्भ राज की कन्या दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार नारद मुनि से सुनकर हम उसमें भाग लेने कुण्डिनपुर जा रहे हैं। अपने ही मुख से याचना करना अच्छा नहीं लगता। अतः हम चाहते हैं कि तुम हमारे दूत बनो।

नल यह सुनकर बड़े असमंजस में पड़ गया। किन्तु अन्त में भक्तिवश कहो, चाहे भय से कहो, उसने देवों का दूत होना स्वीकार कर लिया। देवों के विदा हो जाने पर नल को चिन्तित देख श्रुतशील ने नल से कहा कि तुम्हें किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, दमयन्ती देवताओं को न वर कर तुम्हें ही वरेगी, तुम्हारे प्रति वह अनुरक्त हो चुकी है। उस दिन नल ने रात्रि वहीं व्यतीत की।

षष्ठ उच्छ्वास—प्रभात में वैतालिक गीतों के साथ राजा ने नींद तोड़ी। प्रातः कृत्य कर, भगवान् भास्कर की स्तुति कर, सुरासुर गुरु गौरीपति तथा नारायण की अभ्यर्चना की। राजा विजयी गजेन्द्र पर सवार हुआ। हाथी घोड़ों पर आरूढ़ सैनिक आगे दौड़ा दिये। श्रुतशील की विन्ध्याटवी वर्णन की श्लिष्ट उक्तियों से मार्ग आसानी से पार होता गया। संध्या होने पर मधुकरों की झंकार से मनोहर एक जल प्रचुर स्थली में सेना ने पड़ाव डाला।

प्रातः पुनः यात्रा आरम्भ हो गयी। मार्ग में वृक्ष के नीचे बैठा हुआ एक श्रान्त पथिक मिला। वह अति मधुर संगीत-लहरी के साथ गा रहा था। उससे बात करने की इच्छा से ज्यों ही राजा उसके अभिमुख हुआ, त्यों ही उसने बड़े मनोहारी शब्दों में राजा की स्तुति की। राजा ने अपने अंगों के आभूषण देकर उसका सत्कार किया और सामने बहती हुई नदी का तथा उसका अपना परिचय पूछा। उसने बताया कि इस नदी का नाम तापी है और मेरा नाम पुष्कराक्ष है। मैं वार्ताहर हूँ। आपकी प्रेयसी दमयन्ती ने मुझे आपका समाचार जानने भेजा है। कल आपकी उसके भेजे हुए किंनरमिथुन से भी भेंट होगी। उसने स्वयं अपने कर-किसलय से भोजपत्र पर आपको यही चिट्ठी लिखी है। नल ने उत्सुकता के साथ उसे खोलकर पढ़ा। उसमें नल को याद करते हुए लिखा था कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब कुंडिनपुर की भूमियाँ तुम्हारे चरणों से भूषित होंगी।

उस पत्र को पढ़कर नल अत्युत्सुक होकर 'दमयन्ती कहाँ है, क्या कर रही है' आदि वृत्तान्त उससे पूछने लगा। उत्तर में पुष्कराक्ष ने कहा कि वह दिन-रात आपका ही ध्यान करती है और आपके सन्देश के श्रवण की लालसा से उन्हीं राजहंसों को खोजती फिरती है। आपके देश से आई हुई वायु के स्पर्श से रोमांचित हो जाती है। चित्रफलक पर आपका चित्र बनाकर उसी से नेत्रों को तृप्त करती है। इस प्रकार दमयन्ती विषयक बातें करते हुए सेना के श्रम की सूचना पाकर उस दिन वहीं विश्राम करने के लिये सेनापति को आदेश दिया। स्वयं पूर्व सूचित किंनरमिथुन की प्रतीक्षा में मृगया विनोद के बहाने से इधर-उधर घूमने लगा। पुष्कराक्ष भी उसे पयोष्णी नदी, उसके वन प्रदेश, जमदग्नि-आश्रम आदि दिखाता रहा। नल वहाँ मुनियों से मिला और उसने पयोष्णी में स्नान किया।

इतने में ही एक स्थान पर किंनरमिथुन का परस्परालाप उसके कानों में पड़ा। पास पहुँचने पर पुष्कराक्ष ने परिचय दिया कि यह सुन्दरक नाम का किंनर और यह विहंगवागुरिका नाम की किंनरी है। सुन्दरक ने राजा को प्रणाम कर दमयन्ती द्वारा प्रदत्त अंगूठी, रेशमी वस्त्र, युगल तथा रुचिर मणि

कर्णपूर उपहार में दिये। राजा दमयन्ती की भेंट स्वीकार कर सन्ध्या होने पर किन्नर युगल को साथ ले अपने शिविर को चला आया। वहाँ किन्नरकिन्नरी के विद्या-विनोदों एवं अद्भुत गीतियों से उसका अतिशय मनोरंजन हुआ। दमयन्ती का ध्यान करते-करते उसे रात्रि में निद्रा भी नहीं आई।

प्रातःकाल पुनः यात्रा शुरू हुई। मार्ग के उन्मादक दृश्यों को देखते हुए वे आगे बढ़े। पुष्कराक्ष वन प्रदेशों की रमणीय शोभा का वर्णन करता चलता था। अन्त में राजा ने पुष्कराक्ष से कहा—'भद्र, इन विन्ध्याटवी के तरुओं को छोड़ने की इच्छा नहीं करती। तो भी हम थक गये हैं। कहो, विदर्भ देश अभी कितनी दूर है, जहाँ दमयन्ती से अलंकृत कुण्डिनपुर है। पुष्कराक्ष ने बताया कि अब हम विदर्भ देश पहुँच ही गये हैं। यह वरदातट नामक महाराष्ट्र है, जहाँ सरस्वती के तुल्य विदर्भा नदी बहती है। यहाँ से स्त्रियाँ कौतुकवश ग्राम के उच्च शृंगों पर चढ़ आपको देख रही हैं। इधर शाक-वाटिकाएं हैं, इधर सुरम्य उद्यान हैं, इधर मनोहारिणी सस्य-स्थलियाँ है। यहीं विदर्भा तथा वरदा के संगम तट पर आप सेना-निवेश करायें। यह सुन राजा ने सेनापति को वहीं सेना ठहराने का आदेश दिया। स्वयं भी राजा स्वर्ण-पर्यंकिका पर सुखपूर्वक विश्राम करने लगे।

सप्तम उच्छ्वास—कुंडिनपुर के नागरिक और नगरवधुजन पंडित ब्राह्मणों के साथ सत्कारार्थ पुष्प-फल आदि लेकर नल के दर्शन करने आये। नल ने भी उनका सहर्ष स्वागत किया। इतने में ही महाराज भीम भी आ पहुँचे। दोनों प्रसन्नतापूर्वक गले मिले। नल का अभिनन्दन करते हुए विदर्भराज बोले-आज आपके आगमन से हम अपना जन्म और जीवन धन्य मान रहे हैं। अनेक प्रकार से विनय और उल्लास प्रकट कर प्रशस्त हाथी, घोड़े, माणिक्य, हार बहुमूल्य वस्त्र आदि विविध वस्तुयें उन्होंने उपहार में दीं। नल भी उनकी नम्रता तथा आत्मसमर्पण को देख मुग्ध हो गये। देर तक परस्पर आलाप गोष्ठी का सुख अनुभव कर राजा भीम घर लौट आये। उनके लौट आने पर दमयन्ती की ओर से कुब्ज कुबड़ी एवं नाटी सुन्दर परिचारिकाएँ विविध उपहार लेकर नल के पास आईं। नल उनसे दमयन्ती का उपहार पाकर उसका कहलाया सन्देश सुनकर तथा दमयन्ती विषयक तरह-तरह की

बातें करके बहुत प्रसन्न हुआ। जब वे लौट गईं तब नल ने अपने सेवक पर्वतक नाम के चतुर बौने को पुष्कराक्ष तथा किंनरमिथुन के साथ विविध उपहार लेकर दमयन्ती के पास भेजा।

जब राजा मध्याह्न-कृत्य सम्पादित कर भोजन कक्ष में आया तो उसे बाहर बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ा। दौवारिक से पूछने पर पता चला कि दमयन्ती की ओर से सैनिकों को उत्तमोत्तम भोजन कराया जा रहा है। उसी का यह कोलाहल है। नल के लिये दमयन्ती ने अपने हाथ से सुरस, स्वादु भोजन बना कर भेजा। प्रिया के हाथ का बना भोजन नल को बहुत रुचिकर लगा तथा उसने पुनः उसकी पाक-कला की प्रशंसा की। भोजनोपरान्त विश्रामकक्ष में राजा ने थोड़ी देर विश्राम किया। इतने में ही पर्वतक, जिसे कुछ देर पूर्व नल ने दमयन्ती के पास भेजा था, खूब सजा-धजा हुआ और अलङ्कार धारण किये हुए लौटा। आते ही उसने दमयन्ती के पास पहुंचने तथा उससे हुई बातचीत का सारा वृत्तान्त राजा को सुनाना आरम्भ कर दिया। उसने बताया कि मुझे आपका भेजा दूत जानकर दमयन्ती बहुत प्रसन्न हुई और उसने प्रेमपूर्वक आपके दिये उपहार स्वीकार कर लिये। इसी प्रसंग में पुष्कराक्ष ने उसे यह कह दिया कि महाराजा नल यद्यपि आपमें पूर्णतः अनुरक्त हैं, तो भी इन्द्र आदि लोकपालों के आग्रह से आपको यह कहने आये हैं कि आप उन्हीं में से किसी को वर लें। पहले तो उन्हें विश्वास न हुआ, किन्तु जब मैंने भी इसका समर्थन किया तो वे चिन्तित हो उठीं। वैसी व्यग्रता की अवस्था में मैं उन्हें छोड़कर आ गया हूँ।

दमयन्ती की दशा सुन नल को बड़ी चिन्ता हुई। रात्रि में चाँदनी छिटक आने पर उसी प्रकाश में मार्ग देखते हुए भीम राजा के भव्य प्रासाद पर जा पहुँचे। वहाँ इन्द्र के वर से अदृश्यरूप हो कन्यान्तःपुर में भी प्रविष्ट हो गये। वहाँ दोनों ने एक-दूसरे को देखा, तथा एक दूसरे के रूप के दर्शन कर मुग्ध रह गये। बड़ी कठिनाई से अपने आपको सम्भाल कर नल ने दमयन्ती को देवों का सन्देश कहा और उन्हीं में से किसी को वरने का अनुरोध किया तब उसकी सखी प्रियंवदिता बोली—'महाराज, जो सुनना था सुन लिया, देवों का सन्देश भी जान लिया। पर किसी के प्रति प्रेम अपनी इच्छा

से नहीं, किन्तु ईश्वरेच्छा से ही होता है। यह मेरी सखी तो आप में ही अनुरक्त है। आप को छोड़ किसी अन्य का वरण यह नहीं करेगी।'

इसके वाद नल ने अन्तःपुर में अधिक देर ठहरना उचित न समझ वहाँ से प्रस्थान किया। दमयन्ती की रूप-माधुरी का वह पान कर चुका था। अब मन उससे हटाये नहीं हटता था। शिरीष-कुसुम सम कोमल शयन पर लेटे हुए उसने दमयन्ती विषयक चिन्ता करते हुए ही रात्रि व्यतीत कर दी।

महाभारत का नलोपाख्यान

नलचम्पू की कथा महाभारतीय वनपर्व के नलोपाख्यान पर आधारित है। वनपर्व में यह उपाख्यान ५३ से ७९ तक सत्ताईस अध्यायों में वर्णित है। निपध का राजा वीरसेन का पुत्र नल है। विदर्भ में भीम राज्य करता है। भीम के कोई सन्तान नहीं है। एक दिन दमन नामक ब्रह्मर्षि उसके पास आते हैं। राजा रानी सहित उनका परम सत्कार करता है। मुनि प्रसन्न हो उन्हें वर देते हैं कि तुम्हारे एक कन्यारत्न दमयन्ती और तीन यशस्वी कुमार दम, दान्त तथा दमन उत्पन्न होंगे। दमयन्ती का जन्म होता है। यौवन आने पर उसका रूप लावण्य ऐसा निखर उठता है, कि देवों तथा यक्षों तक में वैसी रूपवती कोई नहीं दिखाई देती। इधर नल भी रूप में ऐसा लगता है, मानो मूर्तिमान् कामदेव ही हो। अनेक जन नल की दमयन्ती के सम्मुख और दमयन्ती की नल के समुख प्रशंसा करते हैं। एक-दूसरे के गुण सुन कर उनमें परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाता है। उत्कण्ठा के प्र.. होने पर एक दिन नल अन्तःपुर के समीपस्थ वन में मनोविनोदार्थ चला जाता है। वहाँ सुवर्ण पंखों वाले हंसों को विचरता देख उनमें से एक को पकड़ लेता है। हंस उसे कहता है कि तू मुझे मार मत, मैं तेरा प्रिय करूंगा, दमयन्ती के सम्मुख तेरा ऐसा वर्णन करूंगा कि तुझे छोड़ वह किसी अन्य पुरुष का ध्यान तक नहीं करेगी। हंस के ऐसा कहने पर राजा उसे छोड़ देता है। तब हंस उड़कर विदर्भनगरी में पहुँच दमयन्ती के समीप उतरते हैं। दमयन्ती और उसकी सखियाँ उन्हें पकड़ने का यत्न करती हैं। दमयन्ती जिस हंस का पीछा करती है वह मनुष्य की वाणी में नल की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है और कहता है कि यदि तू उसकी

पत्नी हो जाये तो तेरा जन्म सफल हो। दमयन्ती हंस से कहती हैं कि ऐसी ही बात तुम जाकर नल से कहो। हंस वैसा ही करता है।

दमयन्ती हंस के मुख से नल का वृत्तान्त सुन अत्यन्त अस्वस्थ चित्त हो जाती है, किसी प्रकार उसे चैन नहीं पड़ता। राजा भीम उसकी दशा समझ स्वयंवर रचाते हैं। सब राजा स्वयंवर में पहुँचते हैं। इसी समय देवों के ऋषि नारद और पर्वत घूमते हुये इस लोक से इन्द्रलोक पहुँचते हैं। स्वागत तथा कुशलप्रश्न के अनन्तर इन्द्र नारद से पूछते हैं कि क्या बात है' सदा क्षत्रियगण युद्ध में निधन को प्राप्त कर यहाँ आ मेरे अतिथि बना करते हैं, आजकल उनका आना बन्द क्यों है? नारद उन्हें बताते हैं कि सब राजा दमयन्ती के स्वयंवर में गये हुये हैं। यह सुन देवता भी स्वयंवर में सम्मिलित होने चल पड़ते हैं। इधर नल भी दमयन्ती को पाने की आशा से प्रस्थान करता है। मार्ग में देवता काम के समान रूप वाले नल को जाता हुआ देखते हैं। वे अपने विमानों को रोक, आकाश से नीचे उतर कर नल को अपना दूत बनने के लिये कहते हैं। नल वचन देता है और उनसे उनका परिचय तथा कार्य पूछता है। इन्द्र उसे बताता है कि हम इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा यम हैं। तुम हमारे दूत बनकर दमयन्ती के पास जाओ और उसे हममें से किसी एक को वरने के लिये कहो। इस पर नल हाथ जोड़ कर कहता है कि इस कार्य के लिये आप मुझे न भेजें, क्योंकि मैं स्वयं दमयन्ती से विवाह का इच्छुक हूँ। तब देव कहते हैं कि पहले वचन देकर अब तुम क्यों मुकर रहे हो? तुम्हें जाना ही होगा। लाचार हो नल कहता है—राजभवन तो बड़े सुरक्षित होते हैं, मैं अन्दर कैसे प्रवेश कर सकूँगा? इन्द्र के प्रभाव से नल दमयन्ती के महल में पहुँच जाता है। वहाँ वह सखीगणों से घिरी हुई, सुकुमारांगी, चारुहासिनी, चन्द्रप्रभा को भी तिरस्कृत करने वाली, रूपवती दमयन्ती को देखता है। सभी अकस्मात् अपने बीच नल को देख चकित रह जाती हैं। दमयन्ती के पूछने पर नल अपना परिचय देकर देवों का कार्य कहता है।

दमयन्ती नल को उत्तर देती है कि मेरा प्रणय तो आपके प्रति है। आपके वरने के लिये ही मैंने राजाओं को एकत्र कराया है। यदि आप मुझे

त्यागेंगे तो मैं विष, अग्नि, जल या रस्सी से अपना प्राणान्त कर लूंगी। न
कहता है लोकपालों के रहते तू मुझ मनुष्य को क्यों वरना चाहती है, मैं
उनके पैरों की धूल के बरबर भी नहीं हूँ। देवों का अप्रिय करके कोई जीवि
नहीं रह सकता। दमयन्ती फिर भी नल के प्रति ही अपना प्रेम प्रकट कर
है। तब नल कहता है कि देवों को वचन देकर मैं विपरीत आचरण कैसे करूं
इस पर दमयन्ती कहती है कि सब देव भी स्वयंवर में आयें, आप भी आ
देवों के सामने मैं आपको वर लूँगी। इस प्रकार दोष नहीं होगा। यह वात
लाप कर नल देवों के पास आता है और दमयन्ती से हुई अपनी बातची
वैसी की वैसी सुना देता है।

स्वयंवर का उत्सव आरम्भ होता है। सब राजा अपने-अपने आसन
पर बैठे हैं। इतने में दमयन्ती रंगमंच पर प्रवेश करती है। एक-एक कर उस
सम्मुख राजाओं के नामों का कीर्तन होने लगता है। तभी वह देखती है
नल की आकृति वाले पाँच पुरुष बैठे हैं। इससे वह असली नल कौन है?
नहीं पहचान पाती। अन्त में वह देव की ही शरण में जाना उचित समझ
है वह हाथ जोड़ देवों को नमस्कार करती है और उनसे प्रार्थना करती है
नल को पति रूप में प्राप्त कराने में वे उसके सहायक हों। देवता दमयन्ती
नल के प्रति सच्चा अनुराग देख नल की आकृति छोड़ अपने असली रूप
आ जाते हैं। दमयन्ती नल को वर लेती है। दोनों देवों को प्रणाम करते
और देव नल को आठ वर देते हैं। दोनों का विवाह हो जाता है। दमयन
इन्द्रसेन नाम के पुत्र और इन्द्रसेना नाम की कन्या को जन्म देती है। न
यज्ञादि करता हुआ पृथ्वी के पालन में रत रहता है।

कलि भी दमयन्ती को चाहता था। अतः क्रुद्ध हो नल का विन
करने के लिये नल के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है और उसका साथी द्वा
जुए के पासों में। कलि नल के भाई पुष्कर को नल से जुआ खेलने के लि
प्रेरित करता है। कलि के प्रभाव से जुए में नल सब कुछ हार जाता
दमयन्ती सारथि वार्ष्णेय के द्वारा अपने पुत्र-पुत्री को कुण्डिनपुर अपने पिता

घर भेज देती है। वार्ष्णेय उन्हें वहाँ छोड़ अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के पास सारथि का काम करने लगता है। जुए में पराजित हो नल केवल एक वस्त्र पहने एकवसना दमयन्ती के साथ जंगल में निकल पड़ते हैं। नल का वह एक वस्त्र भी हंस लेकर उड़ जाते हैं। वन में भटकते हुए नल एक दिन सोती हुई दमयन्ती का आधा वस्त्र फाड़ उसे सोता छोड़ चले जाते हैं। दमयन्ती वन-वन में उन्हें ढूंढती फिरती हैं। अकस्मात् एक अजगर उसे निगल लेता है। एक मृगव्याध खड्ग से अजगर का पेट फाड़ उसका उद्धार करता है। किन्तु वही उस पर मोहित हो कामार्त हो जाता है। दमयन्ती के शाप से वह निष्प्राण हो भूमि पर गिर पड़ता है।

नल को खोजते-खोजते दमयन्ती उत्तर दिशा में स्थित एक आश्रम में पहुँचती है। तपस्वी योगबल से उसे बताते हैं कि नल से तुम्हारी शीघ्र भेंट होगी। सहसा सब कुछ लुप्त हो जाता है। न आश्रम दिखाई देता है, न तपस्वी दीखते हैं। तब वह वन के वृक्षों, पर्वतों, नदियों से नल को पूछती फिरती है। तभी उसे हाथी, घोड़े, रथ आदि से युक्त एक बड़ा बणिकसार्थ मिलता है। यह जान कि वह चेदिराज सुबाहु के जनपद को जा रहा है, वह उसके साथ हो लेती है। मार्ग में एक सरोवर मिलता है। वहीं सब ठहर जाते हैं। किन्तु आधी रात में जंगली हाथियों का समूह आकर सबको क्षतविक्षत कर डालता है। अनेक मनुष्य तथा पशु मारे जाते हैं। बचे हुए बहुत से लोग उस फक़ीरन दमयन्ती को ही इस दुर्भाग्य का कारण बताते हैं जैसे-तैसे उनके साथ दमयन्ती चेदिराज के नगर में पहुँचती है। प्रासाद के ऊपर से राजमाता उसे देख बुला लेती है और अपनी पुत्री सुनन्दा की सखी बना कर रख लेती है।

उधर नल घोर वन में जलती वनाग्नि के मध्य से किसी प्राणी का आर्त-नाद सुनता है। वहाँ पहुँचने पर कुण्डली मारे एक नागराज दिखाई देता है। वह कहता है कि मैं कर्कोटक नाग हूँ। नारद के शाप से इस दशा को प्राप्त हुआ हूँ। आप से मेरा उद्धार होगा। मैं भी आपका कल्याण करूँगा। नाग नल को डंस लेता है, जिससे उसका शरीर विकृत हो जाता है। नाग कहता

है कि अब आपको कोई पहचान नहीं सकेगा, आप अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ अपने को बाहुक नाम का सारथि बता कर नौकरी कर लें। साथ ही नल को एक वस्त्र देकर वह कहता है कि जब आप अपने असली रूप में आना चाहें तब इस वस्त्र को पहन लें।

राजा भीम नल-दमयन्ती को खोजने के लिये सब राज्यों में ब्राह्मणों को भेजते हैं। चेदिपुरी में सुदेव नामक ब्राह्मण जाता है। यह वहाँ रहती हुई दमयन्ती को पहचान लेता है तथा राजमाता से आज्ञा लेकर उसे कुंडिनपुर ले आता है। उसे पतिविरह से अति दुःखित देख राजा भीम नल के अन्वेषण के लिये ब्राह्मणों को भेजते हैं। दमयन्ती ब्राह्मणों को कहती है कि तुम सब राष्ट्रों में जाकर यह कहना कि जो अपनी पत्नी का आधा वस्त्र चुरा कर छिपा फिरता है वह उस पर दया क्यों नहीं करता ? यदि इसका कोई उत्तर दे तो तुरन्त मुझे आकर सूचित करना। बहुत दिनों बाद पर्णाद नामक ब्राह्मण आकर सूचना देता है कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नाम का एक सारथि है। उसने मेरी बात का यह उत्तर दिया कि उस नारी को क्रोध नहीं करना चाहिये। यह सुनते ही दमयन्ती समझ जाती है कि हो न हो, वही नल है। वह उसे पाने का एक उपाय सोचती है। सर्वत्र अपने दूसरे स्वयंवर की घोषणा करवा देती है। राजा ऋतुपर्ण भी स्वयंवर में आना चाहता है। वह बाहुक बने हुये नल को कहता है कि तुरन्त मुझे कुण्डिनपुर ले चलो। जब वहाँ पहुँचता है तो स्वयंवर की कोई तैयारी न देख समझ जाता है कि भ्रान्ति हुई है। विकृतरूप वाला बाहुक वेषधारी नल कर्कोट का दिया वस्त्र पहन अपने असली रूप में प्रकट हो जाता है। वहीं नल-दमयन्ती का पुनर्मिलन हो जाता है।

नल ऋतुपर्ण को अश्वविद्या सिखा देता है जिसके बदले ऋतुपर्ण उसे द्यूतकला में पारंगत कर देता है। कलि भी नल के शरीर से निकल जाता है। नल पुष्कर के साथ पुनः जुआ खेलता है और उसे हराकर अपना राज्य वापिस पा लेता है।

दोनों कथनों में अन्तर

यद्यपि नलचम्पू की कथा महाभारत के नलोपाख्यान पर आश्रित है, तो भी कवि ने अपनी काव्यकला के अनुरूप उसमें पर्याप्त अन्तर कर दिया है। नलोपाख्यान के २७ अध्यायों में से केवल चार (५३–५६) अध्यायों की कथा नलचम्पू मे आयी है। उसमें भी अनेक वृत्त कवि-कल्पना की उपज हैं। पथिकों द्वारा नल-दमयन्ती के सम्मुख एक दूसरे की प्रशंसा करना, किंनरमिथुन द्वारा शरद्-का गान किया जाना, वनपालिका का हंस को पकड़ कर लाना, हंस के पकड़े जाने पर हंस-प्रिया का आंसू बहाना, आकाशवाणी होना, बन्दरी के बच्चे को देख प्रियंगुमंजरी को अपने निःसन्तान होने का अनुभव होना, दमयन्ती की सखी परिहासशील की हंस से बातें होना, हंस को दमयन्ती द्वारा हार अर्पित करना, देवों के आगमन की सूचना देने अम्बरतल से निर्निमेष पुरुष का उतरना, कुंडिनपुर की ओर जाते हुए नल को मार्ग में दमयन्ती द्वारा भेजे हुए पुष्कराक्ष तथा किनर-किनर सुन्दरक एवं वहंगवायुरिका का मिलना, नल और दमयन्ती का एक-दूसरे के पास आभूषण आदि उपहार भेजना, कुंडिनपुर के समीप पहुँचने पर पुरवासियों तथा भीम राजा का नल से मिलने आना, दमयन्ती द्वारा स्वादु रसीले भोजन सैनिकों तथा नल के लिये भेजना आदि वर्णन महाभारत में नहीं है। नलचम्पू में भीम की भार्या दमनक मुनि से कन्या प्राप्ति का वरदान पा क्रुद्ध होती है, क्योंकि उसे पुत्रप्राप्ति की आशा थी। किन्तु महाभारत में मुनि कन्या के साथ तीन कुमारों की प्राप्ति का भी वर देते हैं। महाभारत में नल के मन्त्री श्रुतशील की कोई चर्चा नहीं है, जबकि नलचम्पू में वह सदा नल के साथ रहता है। कुछ पात्रों में भी अन्तर है। नलचम्पू में कवि-कल्पित अनेक पात्र नये हैं। महाभारत में जब नल अयोध्या में छद्मवेष में राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि के रूप में रहा था तब उसने अपना नाम बाहुक रखा था, पर नलचम्पू में बाहुक नल का सेनापति है। नलचम्पू में पर्वतक नल का सेवक है, जिसे वह दमयन्ती के पास भेजता है, किन्तु महाभारत में नारद और पर्वत देवों के ऋषि है। सामान्यतः कवि ने

कथानक में जो नूतन उद्भावनाएँ की है वे उसकी उर्वर कल्पना शक्ति की परिचायक है।

नल-कथा पर अन्य साहित्य

नल की कथा पर्याप्त प्राचीन है। महाभारत से पूर्व वाल्मीकि-रामायण[1] में भी इसका सकेत मिलता है। स्कन्ध पुराण[2], क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी[3] तथा सोमदेव के कथासरित्सागर[4] में भी यह कथा मिलती है। इस कथा को आधार बनाकर नलचम्पू के अतिरिक्त कुछ इतर काव्य भी लिखे गये हैं, यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है। लगभग ६०० ई० में क्षेमीश्वर कवि ने सात अंकों का नैषधानन्द नाटक लिखा। १२वीं शती का रामचन्द्र का नल-विलास नाटक है। १२वीं शती के उत्तरार्ध में लिखा गया श्रीहर्ष का नैष-धीयचरित महाकाव्य प्रसिद्ध ही है, जिसमें २२ सर्ग हैं। तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि श्रीहर्ष नलचम्पू से पर्याप्त प्रभावित हुये हैं। चार सर्गों का एक नलोदय काव्य है, जिसके रचयिता वासुदेव या रविदेव कहे जाते हैं। यह यमकमय चित्रकाव्य है। एक चित्रकाव्य हरदत्त सूरि विरचित राघवनैष-धीय (१८वीं शती) है, जिनमें श्लेष द्वारा राम तथा नल दोनों का चरित्र वर्णित है। डा० छविनाथ त्रिपाठी ने किसी अज्ञात लेखक के एक दमयन्ती परिणय चम्पू का उल्लेख किया है।[5]

नलचम्पू का काव्यसौष्ठव

नलचम्पू काव्य में नल नायक और दमयन्ती नायिका हैं। प्रधान रस शृङ्गार है। प्रायः माधुर्य और प्रसाद गुण पाया जाता है, तथा पद पद पर लालित्य के दर्शन होते हैं। काव्य के विषय में कवि का क्या आदर्श है यह उसने अपनी कृत्ति के आरम्भिक श्लोकों में स्वयं प्रकट कर दिया है। उसके

---

१. सुन्दरकाण्ड, सर्ग २४।

२. स्कन्द पु०, खण्ड ६, अ० ५४।

३. बृ० क० म० १५·३२१–४४।

४. क० स० सा० ६ अलकारवती ल०, तरंग ६, श्लो० २३७–४१६।

५. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० २५५।

अनुसार कवि की वाणी निरन्तर अमृतबिन्दुस्यन्दिनी होनी चाहिये[1]। उसका सारस्वत स्रोत अन्तःकरण में अगाध चमत्कार उत्पन्न करने वाला, विबुधों को आनन्द देने वाला तथा रसों के वैशिष्ट्य से प्रौढ़ होना चाहिये[2]। उसकी भारती प्रसन्न, कान्तिमयी तथा विविध श्लेष से अलंकृत रहनी चाहिये[3]। काव्य वह है जिसके हृदय में लगते ही सिर आनन्द से झूम उठे[4] ये सभी विशेषतायें नलचम्पू में विद्यमान है। उसकी कवि रस तथा पद-बन्ध दोनों को समान आदर देता है। उसकी धारणा है कि सुरस तथा सुबद्ध काव्य ही सुहृदयों का प्रीतिपात्र बनता है[5]। जहाँ उसने बाल्मीकि और व्यास को अपना आदर्श माना है, वहाँ साथ ही बाणभट्ट को भी।

श्लेष का चमत्कार तथा इतर अलङ्कार—त्रिविक्रम को श्लेष बहुत प्रिय है, विशेषतः सभंग श्लेष। सम्पूर्ण नलचम्पू में सभंग श्लेष का चमत्कार देखते ही बनता है। कवि ने कहा है कि सभंग श्लेष का काव्य में लिखने तो लगा हूँ, किन्तु मेरा यह प्रयत्न बाहुओं से दुर्गम समुद्र को तैरने के समान है[6]। उसे भय है कि सभंग श्लेष की गूढ़ता से कहीं मेरा काव्य कठिन न हो जाये, और पाठक उद्विग्न न हो उठें[7]। तो भी कवि अपने प्रयोग में पूर्ण सफल रहा है। उसकी रचना नन्दनोद्यानमाला के समान अर्थगर्भित, सुरस और रम्य रही है।[8] उसकी कृति हारयष्टि के समान उदात नायक रूपी मध्यमणि से शोभित तथा सुन्दर गद्य-पद्य रूपी सुडौल मोतियों से अलंकृत है[9]।

नलचम्पू के श्लेष अतीव प्रसन्न, मनोहर तथा सरल है। वैसे श्लेष संस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रचुरता में दृष्टिगोचर नहीं होते, विशेषकर सभंग श्लेष।

---

१. नलचम्पू १·१।
२. वही १·३।
३. वही १·४
४. वही १·५।
५· नलचम्पू १·१०।
६. वही १·२२।
७. वही १·१६।
८· वही १·२४।
९. वही १·२५।

गद्य तथा पद्य में नर्तन करते हुये से इसके लघु श्लेष सहृदयों के मनों को चुरा लेते हैं।

अप्रगल्भा: पदन्यासे जननीरागहेतव: ।
सन्त्येके बहुलालापा: कवयो बालका इव ॥१·६

कुकवियों का बालकों से साम्य दिखाने वाला यह प्रसन्न श्लेष कितना सुन्दर है ?

निषधापुरी की भूमियाँ अन्दर युवकों को तथा बाहर खगों को एक साथ आनन्द दे रही हैं।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिता: ।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रवयसां मुदम् ।।

अपने जन्म के समय भवन (निशान्त) को अलंकृत करने वाले, तरुण सूर्य के समान कान्ति वाले नल के प्रदीपों की प्रभा को ऐसे ही जीत लिया है, जैसे नवोदित अरुण की कान्ति से पर्याप्त रूप में निशा का अन्त करने वाला प्रभात दीपकों के तेज को हर लेता है—

अलंकृतनिशान्तेन तरुणारुणरोचिषा ।
प्रदीपानां प्रभा तेन प्रभातेन यथा जिता ।।४·१२

राज्याभिषेक के समय नल को आशीर्वाद देती हुई आकाशवाणी हो रही है—

अहीनां मालिका बिभ्रत् तथा दीताम्बलं वपु ।
हरो हरिश्च भूपेन्द्र करोतु तव मङ्गलम् ।।४·२९

हे राजन्, सर्पों की माला धारण करने वाले तथा जिनका ताण्डव नृत्य के समय (गजचर्म रूपी वस्त्र) आकाश में उड़ रहा है, ऐसे शिव और पूर्ण माला पहने पीताम्बरधारी विष्णु आपका कल्याण करें।

सरोरक्षिका राजा को राजहंसी के आगमन की सूचना श्लिष्ट वाणी में दे रही है—

कुरुते नालकवलनं दूरं विक्षपति गर्भजम्बालम् ।
त्वदरिवधूरिव राजन्नुद्यानसरोगता हंसी ।।५·६

हे राजन्, उद्यान-सरोवर में आई हुई कोई हंसी कमल-नालों का कवलन कर रही है और सरोवर के गर्भ में स्थित शैवाल को दूर फेंक रही है, जैसे आपके शत्रु की वधू अलक-वलन (केश-प्रसाधन) नहीं करती तथा गर्भजात बालक को भी गिरा देती है।

त्रिविक्रम के श्लेष विरोधाभास, परिसंख्या, रूपक, उपमा, भ्रान्तिमान्, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से मिश्रित होकर और भी अधिक कमनीयता उत्पन्न कर देते हैं। श्लिष्ट विरोधाभास का एक उदाहरण देखिए—

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग् दृश्यते श्रूयते वा ॥१·३९

नल के मन्त्री श्रुतशील का वर्णन हो रहा है। वह ब्राह्मणों का हितकारी है, तो भी ब्राह्मणों का धन हर लेता है (ब्रह्म-वित्त-अपहारी)। स्त्रीयुक्त होते हुये भी विरही (विप्रयुक्त) है। द्वेषसहित (स-द्वेषः) होता हुआ भी द्वेष से निर्मुक्त चित्त वाला है। प्रसंग श्लेष से ब्रह्मज्ञ तथा संतापहारी (ब्रह्मवित् तापहारी), ब्राह्मणों से युक्त (विप्र-युक्त), और शोभनवेष वाला (सद्-वेषः) अर्थ करने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

श्लिष्टोपमा का प्रयोग भी खुल कर हुआ है। कवि आर्यावर्त का वर्णन कर रहा है। वहाँ के ग्राम तुरंगों से उपशोभित संग्रामों के समान चतुर गोपों से शोभित हैं—"यत्र चतुरगोपशोभिताः संग्राम इव ग्रामाः। नल परशु से भासित परशुराम के समान पर-शुभ-आसित हैं—'परशुराम इव परशुभासितः"। वह अलघु तथा दण्ड-भंग से जनों को रंजित करने वाला है, जैसे राम ने अलघु कोदण्ड के भंग से जनक को रंजित किया था—"राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः"।

श्लिष्ट परिसंख्या का प्रयोग तो कवि को अत्यधिक रुचिकर है। प्रथम उच्छवास में ही इसके कई उदाहरण आये हैं, द्वितीय उच्छ्वास में भार्गव के आश्रम का वर्णन हो रहा है—

यत्र च विपत्त्वाः सन्ति साधवो न तु तरवः, विजृम्भमाणकमलानि सरांसि न जनमनांसि, कुवलयालंकाराः क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्यः विपदा क्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि।

उस आश्रम में साधुजन विपत्त्र (विपत्ति से त्राण करने पाले) थे, तरु विपत्त्र (पत्ररहित) नहीं थे। सरोवर विजृम्भमाण कमलों वाले थे, जनों के मन विजृम्भमाण कुत्सित मलों वाले नहीं थे। क्रीड़ा-वापियाँ कुवलयों (नील कमलों) से अलंकृत थीं, नारियाँ कुत्सित वलयों से अलंकृत नहीं थीं। सरिताओं के तट विपद (पक्षियों के चरणों) से आक्रान्त थे, कुल विपद् (विपत्ति) से आक्रान्त नहीं थे।

शाब्दी क्रीडा के लिये त्रिविक्रम ने विविध श्लेषों का आश्रय लिया है कहीं वचनश्लेष कहीं लिंग-श्लेष है, कहीं प्रथमा आदि विभक्तियों का श्लेष है। भोज नृप की महत्ता दिखाते हुए कवि कहता है—

"यस्यानवरतमुत्कृष्टालयः क्रीडायनपादपाः पौरलोकश्च, अपरुषो दायदा वाग्विभवश्च, विमत्सराः समासदो देकेश्च" उच्छ्वास २

"भोज के क्रीडावन के वृक्ष अलियों को आकृष्ट करने वाले थे और पौर लोक उत्कृष्ट आलयों (गृहों) वाला था। दायाद जन क्रोध-रहित (अपरुषः) थे, और उसका वाग-विभव अकठोर (अ-परुषः) था। सभासद् मत्सर रहित थे, और देश पक्षियुक्त सरोवरों वाला (वि-मत्-सर) था।" यहाँ प्रथमा के एक-वचन और बहुवचन का श्लेष है।

प्रियंगुमंजरी का वर्णन "यस्या पद्मानुकारिणी कान्तिर्लोचने च। उच्छ्-वास २)" आदि शब्दों में किया है। "उस ी कान्ति पद्मा का अनुकरण करने वाली थी, और दोनों नेत्र पद्मों का अनुकरण करने वाले थे।" यहाँ प्रथमा के एकवचन और द्विवचन का वचनश्लेष तथा स्त्रीलिंग और नपुंसक-लिंग का लिंगश्लेष दोनों हैं।

इसी प्रसंग में "यस्याः सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुम-मालिका" आदि में तृतीया और प्रथमा का श्लेष है। 'उसके कण्ठ में सु-मधुर वाणी के सदृश शुभ पराग के प्रसर वाली (सु-मधु-रया) कुसुममाला शोभा पाती थी।'

नलचम्पू के प्रायः सभी पात्र नल, दमयन्ती, श्रुतशील, मृगयावनपालक, सरोरक्षिका, पथिक, राजहंस किंनर-मिथुन आदि श्लिष्ट भाषा बोलते हैं।

श्लेष-व्यतिरिक्त अलंकारों में से विरोध, परिसंख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान् तथा विभावना में कवि की प्रतिभा विशेष स्फुरित हुई है। कहीं-कहीं इनसे इतर अलंकार भी शोभा बढ़ाते हैं। अनुप्रास की छवि सर्वत्र दिखाई देती है। कई स्थानों पर यमक का प्रयोग भी हुआ है। यमक का एक सुन्दर उदाहरण निम्न है—

धुतकदम्बकदम्बकनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः ।
हृततुषारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः ।।१·४३

प्रकृति चित्रण—त्रिविक्रम प्रकृति-चित्रण के भी परम प्रेमी हैं। नग, नगर, वन, उपवन, नदी, सरोवर, आश्रम, चन्द्रोदय, सन्ध्या, प्रभात, वर्षा, शरद् आदि इनका वर्णन बड़ा ही कौतुहल उत्पन्न करने वाला है। प्रथम उच्छ्वास में नारीपरक अप्रस्तुत अर्थ को सूचित करते हुए वर्षा के आगमन का जो समासोक्तिमय चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त हृदयावर्जक है। द्वितीय उच्छ्वास के शरद्, वन, क्रीडाचल तथा चन्द्रोदय के वर्णन भी कमनीय हैं। वन-दर्शन में शाब्दी क्रीडा का एक चित्र देखिए—

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटाः, स्फुरदेक पुष्पमनेकपुष्पाः, समुद्वेजितराममानन्दितरामाः समुपहसन्ति लङ्केश्वरं तरवः।

"इस वन के वृक्ष रावण का उपहास कर रहे हैं, क्योंकि रावण के पास त्रिजटा ही थी, इनके पास अनेक जटाएँ (जड़े) हैं। रावण के पास एक ही पुष्प (पुष्पक विमान) था इनके पास अनेक पुष्प है। रावण ने राम को उद्वेजित किया था, ये रामाओं (स्त्रियों) को आनन्दित करते हैं।"

पुष्पित तरुओं के ऊपर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। उन्हें मेघ समझ मयूर मृदु कूक करता हुआ नाच रहा है और अपने कलाप को मन्द-मन्द हिला रहा है—

पटलमलिकुलानामुन्नमन्मेघनीलं
भ्रमदुपरि तरुणां पुष्पितानां विलोक्य ।
मृदुमदकलकेकानिर्भरो नृत्यसक्त-
स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः ।।२·४

आकाश में चन्द्रमा उदित हो गया है। चन्द्रिका सबको मूढ़ बना रही है "चन्द्र-किरणों से जगती श्वेत हो जाने पर बेचारा कौआ रात्रि को दिन

समझ नींद से उठ बैठा है। किन्तु सामने स्थित भी अपनी प्रिया को नहीं पहचान पा रहा, क्योंकि वह भी श्वेत हो गई है, और उसे खोज रहा है।"[१]

'मुग्ध ग्वाले चन्द्र-किरणों को दूध की धारें समझ गौओं के थओं के थनों के नीचे मटकियाँ लगा रहे हैं। कान्ताएं नील कमल को श्वेत कमल समझ कान में खोंस रही हैं। भीलनी झरबेरी के बेरों को श्वेत मोती समझ चुन रही है"—

> मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो बल्लवाः
> कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि।
> कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
> सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥ २.३६

कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदपण में यह पद्य भ्रान्तिमान् अलंकार के उदाहरण में उद्धृत किया है। चन्द्रोदय कवि को इतना प्रिय लगा है कि सप्तम उच्छ्वास में उसे पुनः वर्णित किया है। "चन्द्रिका से भवन धवलित हो जाने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो दूध का सागर सीमा तोड़ उमड़ पड़ा है, मानो चन्दन-वारि से भूभाग को सींच दिया गया है, मानो सुधा के गाढ़े घोल से दिग्भित्तियों को लेप दिया है, मानो कर्पूर-चूर्ण की वृष्टि हो रही है. मानो भवन श्वेत स्फटिकमणि के महा-मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट हो गया है, मानो पिघले हुए तुहिनाचल की बाढ़ आ गयी है।"

आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवार्धिना, सिक्तभूभागाङ्गणमिवामन्द-चन्दनाम्बुच्छटाभिः, विलिप्तदिग्भित्तिकमिव सान्द्रसुधापङ्कपिण्डितैः, पूरित-मिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्ट्या, प्रविष्टमिव स्फटिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम्, उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचलमहाप्लेन भुवनमासीत्।

पञ्चम उच्छ्वास में विन्ध्य-स्थलियों का चारुचित्रण भी चमत्कारजनक है। कहीं रंगत् तरंगा नर्मदा के दर्शन होते हैं, तो कहीं उसके तीर पर स्थित जरत्-तापसों के और कहीं उसके जल में क्रीड़ा करती हुई पुलिन्द स्त्रियों के कहीं उत्तुंग पादप हैं, कहीं भ्रमर-पंक्तियाँ हैं, कहीं लटकती हुई लाँगूल वाले

---

१. नलचम्पू २.३५।

लंगूर बन्दर हैं, कहीं विहङ्गावलियाँ हैं। पुष्पित उत्तुंग तरुओं के विषय में यह रूपक संकीर्ण उत्प्रेक्षा कैसी सुन्दर बन पड़ी है—

वायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।
दिगद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ॥५·४५

पंचम उच्छ्वास के अन्त में सन्ध्या-वर्णन तथा षष्ठ के आरम्भ में प्रभात का वर्णन कवि ने किया है। प्रभात-वर्णन के निम्न श्लोक में आकाश में गङ्गा-यमुना के संगम की उत्प्रेक्षा ने कवि को 'यमुनात्रिविक्रम' ख्याति से भूषित कर दिया है—

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य ।
जयति किमपि तेजः सांप्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ ६·१

एक त्रिविक्रम तो विष्णु हैं, जिनके पद (चरण) से निकल कर गङ्गा आकाश में आई है, दूसरे त्रिविक्रम ये नलचम्पूकार हैं, जिनके पद (पदप्रयोग) ने यमुना को भी आकाश में ला बैठाया है। विष्णु गंगा-त्रिविक्रम है तो ये यमुना-त्रिविक्रम हुए। नलचम्पू के आरम्भ और पर्यवसान

रस-संनिवेश—कवि का मुख्य रस विप्रलम्भ शृङ्गार है। पथिक, राजहंस एवं वार्ताहरों के मुख से एक-दूसरे के सौन्दर्य की चर्चा सुन नल-दमयन्ती दोनों के मन में स्नेह अंकुरित होता है और वे एक-दूसरे को पाने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। प्रकृति, वातावरण कथासूत्र सब कवि ने ऐसे रखे हैं, जो इस विप्रलम्भ-सज्जा में उद्दीपन-सामग्री का कार्य करते हैं। दोनों की दशा का परिसंख्यामय निम्न वर्णन देखिए—

'एवमनयोरन्यप्रेषितप्रच्छन्नदूतोत्क्षिप्तानुरागयोः चलन्त्यङ्गानि न मनोरथाः, परिवर्तते चक्षुर्न हृदयम्, कृशतामेत्यङ्गयष्टिर्नोत्कण्ठा, मन्दतां यात्युत्साहो नाभिलाषः, स्फारीभवति निःसहता न निद्रा, वर्धते चिन्ता न रतिः, शुष्यत्यधर-पल्लवो नाग्रहरसः।" ५ म उच्छ्वास

काव्य की समाप्ति भी विप्रलम्भ के साथ हुई है। अङ्गी रस के अतिरि अङ्ग रूप में कहीं-कहीं वीर, रौद्र, भयानक, करुण, हास्य और अद्भुत र का भी संनिवेश हुआ है। प्रथम उच्छ्वास में मृगया और शूकर तथा नल संग्राम में वीर रस की अनुभूति होती है। शूकर की आकृति तथा चेष्टा की भयोत्पादकता तथा शिकारियों से वन्य प्राणियों का त्रास भयानक स्थिति को भी प्रस्तुत करते हैं। चतुर्थ उच्छ्वास के अन्त में नल को छोड़ वीरसेन के वन-प्रस्थान में करुण की झांकी है। द्वितीय उच्छ्वास में मृणालि को नायिका बताकर उसके प्रति किये गये हंस-व्यवहार के वर्णन में, प उच्छ्वास में दुहरी माला को नल के इकहरा करने पर हंस की उक्ति में त सप्तम उच्छ्वास में कन्यातःपुर में नल की विहङ्ग-वागुरिका के साथ बा चीत में मृदु हास्य है। हस-हसी के मनुष्य-वाणी में वार्तालाप करने, नल अकस्मात् दमयन्ती-आवास म पहुँच जाने आदि के चित्रण में अद्भुत का यो दिखाई देता है।

अन्य विशेषतायें—कवि-वस्तु चित्रण एवं वृत्त-वर्णन में भी कुशल है इसके स्वभावोक्तिमय वस्तु-चित्र हृत्पटल पर वैसे के वैसे ही अंकित हो जा हैं। प्रथम उच्छ्वास का शूकर, पथिक तथा राजपुत्री का वर्णन[1], तृतीय मुनिवर्णन[2], पंचम का विन्ध्यस्थली भूमियों तथा जरत्-तापसों का वर्णन[3] ए षष्ठ का ग्राम्यस्त्रियों तथा सस्यस्थलियों का वर्णन[4] इसके सुन्दर उदाहरण हैं सस्यस्थलियों का वर्णन देखिए—

> एतास्ताः परिपक्वशालिकलमाः सुस्वादुदीर्घेक्षवो
> वप्रप्रान्तहरित्तृणस्थलचलत्पीनाङ्गगोमण्डलाः ।
> दृश्यन्ते पुरतः सरोरुहवनभ्राजिष्णुनीराशयाः
> प्रान्तोन्नाविविचित्रपत्त्रिनिचयाः सस्यस्थलीभूमयः ।। ६·७१

१. श्लोक ४४, ४५, ४८ के वाद का गद्य ५२, ५६ से पूर्व का गद्य।
२. श्लोक ७ से पूर्व का गद्य।
३. श्लोक ३४, ३७।
४. श्लोक ७०, ७१।

वृत्त-वर्णन में मृगया, भोजन, स्नान, यात्रा आदि के चित्रण चमत्कृति उत्पन्न करने वाले हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी अच्छा हुआ है। शिक्षाप्रद उपदेश तथा मधुर सूक्तियों की मञ्जुलता भी पाई जाती हैं। चतुर्थ उच्छ्वास में राजमन्त्री सालंकायन का नल को दिया गया उपदेश कादम्बरी के शुकनासोपदेश का स्मरण करा देता है—

तत् तात, सुविषमेधर्वातिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मरस्मयेन विनयम्। अविनीतोऽग्निरिव वहति।···आवर्जय गुणान्। निर्गुणे धनुषीव सुवंश्येऽपि कस्याग्रहो भवति। अभ्यस्य कलाः। निष्कलो वीणाध्वनिरिव न प्रशस्तते पुरुषः। त्यज जाड्यम्। जाड्ययोगेन हि मानी दूष्यतां याति।···पाहि प्रजाः। प्रजायो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकैः। मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षीः। व्याकरणे हि वृद्धिगुणं बाधते न सत्पुरुषेषु।

"हे प्रिय, अति जलपूर्ण मेघ में विद्यमान चञ्चल विद्युद्-विलास के समान अति विषम, अध में प्रवृत्त कराने वाले चञ्चल यौवन में स्थित हुआ तू गर्व से विनय को मत भूलना। अविनीत पुरुष अग्नि के समान दाह उत्पन्न करता है। गुणों को धारण करना। गुणहीन पुरुष का उच्चवंश में उत्पन्न होने पर भी आदर नहीं होता, जैसे धनुष उत्तम वंश (बांस) का हो तो भी यदि वह गुण-हीन (प्रत्यंचा-रहित) है तो कौन उसे ग्रहण करता है। कलाओं का अभ्यास करना। कला-हीन पुरुष बेसुरी वीणाध्वनि के समान प्रशंसा नहीं पाता। जड़ता को छोड़ना। जड़ता के योग से मानी पुरुष दूषित हो जाता है, जैसे जड़ता (अति शैत्य) से हिमसंहति दूषित होती है। प्रजाओं का पालन करना। प्रकृष्ट जाप वाले ब्राह्मण के समान प्रजापालक क्षत्रिय पापों से लिप्त नहीं होता। वृद्धि पाकर गुणों से द्वेष मत करना। व्याकरण में ही वृद्धि गुण को बाधित करती है, सत्पुरुषों में नहीं।"

कतिपय दोष

अनेक रमणीक विशेषताओं के होते हुए भी प्रस्तुत काव्य सर्वथा दोषरहित नहीं कहा जा सकता। कुछ दोष निम्न हैं—

१. अवान्तर दीर्घ वर्णनों के कारण कथा-प्रवाह की गति बहुत मन्थर रही है। अतएव सात उच्छ्वासों में थोड़ा सा ही कथांश आ पाया है। प्रथम उच्छ्वास के आर्यावर्त, निषधापुरी तथा मृगया के वर्णन और पंचम-षष्ठ उच्छ्वास के यात्रा वृत्तान्त एवं विन्ध्याटवी के वर्णन इतने लम्बे हैं कि कथा की गति को बिल्कुल अवरुद्ध कर देते हैं।

२. कवि का प्रमुखतः ध्यान श्लेष की शाब्दी क्रीडा पर रहा है। कई स्थलों में जहाँ श्लेष की आवश्यकता नहीं भी थी उसने श्लेष की कलाबाजी दिखाने का प्रयत्न किया। उदाहरणार्थ द्वितीय उच्छ्वास में हंस-हंसी और नल परस्पर क्लिष्ट श्लेष में वार्तालाप करते हैं। हंस के पकड़े जाने पर हंसी की वेदना हास-परिहास का रूप लेले यह नितान्त अनुचित प्रतीत होता है। हंसी राजा से हंस को छोड़ने के लिये कहती है, तब राजा श्लेष के साथ उत्तर देता है कि इसने मृणालिका नाम की नायिका के प्रति जो आचरण किया है, उससे यह बांधने ही योग्य है। इस बात पर हंस हंसी से कहती है—'अच्छा, यह बात है, तुम्हारा चित्त अन्य नायिका पर अनुरञ्जित है'। यह सब वर्णन कवि ने श्लेष के प्रलोभन से किया है। इसकी अपेक्षा नैषध का करुण चित्रण कहीं अधिक हृदयग्राही है।

३. भावात्मक स्थल, मानव-सौन्दर्य-चित्रण एवं प्रकृति-चित्रण को भी प्रायः कवि ने श्लेष तथा इतर अलङ्कारों के भार से आक्रान्त कर प्रकट किया है, जिनमें अलंकृत शैली की छटा तो अवश्य दीख जाता है, किन्तु अपेक्षित स्वाभाविता नहीं आने पाती।

४. कोई-कोई श्लेष ऐसे भी हैं जहाँ प्रस्तुत या अप्रस्तुत किसी एक अर्थ में ही औचित्य प्रतीत होता है, दूसरे में नहीं जैसे, आर्यावर्त के वर्णन में कहा है—"कुपितकपिकुलिता लङ्केश्वरकिंकरा इव भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः कूपाः, अर्थात् उस आर्यावर्त के कुएँ कुपित वानरों से आकुलित रहते हैं और उनमें घड़ों के किनारे टूट-टूट कर गिर पड़ते हैं। किन्तु इससे आर्यावर्त का कुछ गौरव प्रकट नहीं होता। हाँ, लंकेश्वर के सेवकों के पक्ष से अर्थ-योजना सुन्दर

बन जाती है। वे कुछ वानरों की सेना से व्याकुल हैं तथा कुम्भकरण की गहरी नींद को तोड़ने वाले हैं। आर्यावर्त की महिमा बताने में यह वर्णन केवल श्लेष के लोभ से किया गया है।

५. कथा की अपूर्णता भी दोषावह है। कम से कम नल-दमयन्ती का विवाह तो करा ही देना चाहिये था। कथा ऐसे स्थान पर टूटी है जहाँ उसका त्रुटित होना अखरता है।

इसी प्रकार कुछ अन्य दोष भी परिगणित किये जा सकते हैं। परन्तु वस्तुतः इनमें से अधिकांश दोष उस समय के दोष हैं, जिनमें कवि उत्पन्न हुए। उस युग में दीर्घ वर्णनों की प्रचुरता, शाब्दी-क्रीडा एवं काव्य में चित्रता पसन्द की जाती थी। सुबन्धु एवं बाण की शैली आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। तदनुरूप ही कवि ने अपनी लेखनी को प्रवृत्त किया है। त्रिविक्रम की काव्यगत विशेषताओं के सम्मुख ये दोष नगण्य हैं—एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।"

प्रथम उच्छ्वास का कथा-संक्षेप

आर्यावर्त नाम का एक देश है, जो समस्त भू-विस्तार पर चमकते हुये तिलक के समान प्रतीत होता है। उस देश में निषध नाम का प्रसिद्ध जनपद है। वहाँ निषधा नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है, जो साक्षात् पुरुषोत्तम के निवास योग्य लगती है। उस नगरी मे श्री वीरसेन का पुत्र, समस्त शत्रुओं का संहारक, प्रतापी, रणकुशल, नीतिज्ञ, प्रजानुरंजक, पुण्यशाली, परोपकारी नल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रम्य कीर्तिध्वजा समस्त जगत में फहराती थी। सालंकायन का पुत्र श्रुतशील नामक गुणवान् ब्राह्मण उसका महामन्त्री था। वह राजा का जीवनरूप था, प्राणसम था, हृदयतुल्य था, शरीरमात्र से भिन्न मानों दूसरा आत्मा था। राजा नल अपने उस सुयोग्य मन्त्री पर चिन्ताभार छोड़कर स्वयं समस्त सांसारिक सुखों को भोगने लगा। जीवन लोक के सब अनुभव करते हुये उसके दिन व्यतीत होने लगे।

तभी समस्त जगत् में गुणगान किये जाने वाले, अनुपम रूप तथा लावण्य की राशि से राजित उस राजा को मानो दर्शन करने के लिये वर्षाऋतु में पदार्पण किया। सर्वत्र वर्षा की विभूति छा गयी। एक दिन आखेटवन के रक्षक ने राजा से निवेदन किया—महाराज, एक विशालकाय शूकर कहीं से आखेटवन में आ घुसा है। वह कन्द, कसेरू तथा नवशष्पांकुरों से युक्त भूमि के स्निग्ध प्रदेशों को कुचलता हुआ, विकसित लतामण्डपों को तोड़ता हुआ, लीला सरोवर को आलोडित करता हुआ उत्पात मचा रहा है।

राजा ने यह सुन, मृगया विहार के लिये उचित समय जान बाहुक नाम के सेनापति को बुलाकर शीघ्र ही शिकार के प्रयास की सब तैयारी करने का आदेश दे दिया। पैदल सैनिक, वेगवान् घोड़े, शिकारी कुत्ते, धनुष-बाण, जाल सब सज्जित हो जाने पर स्वयं भी राजा प्रशस्त घोड़े पर सवार हो गया और शिकारियों सहित उस वन में जा पहुँचा। शिकारियों ने वन को घेर लिया तथा वन्य जन्तुओं को व्याकुलित कर दिया। वे वननिकुञ्जों को आभाहीन तथा हाथियों को उनके शावकों से वियुक्त करने लगे। गैंडों को पकड़ने तथा घसीटने लगे, चीतों के अङ्ग-भङ्ग करने लगे। क्षण भर में स्थूलकाय शूकर गिरने लगे,

भयभीत मृग वेसुरा शब्द करने लगे, बाण प्रहार से चक्कर खाये हुये भैंसे भूमि पर लोटने लगे। शिकार का ऐसा कोलाहल मचा कि ब्रह्माण्डभाण्ड का उदर फटने सा लगा।

इतने में ही विविध प्राणियों की वधक्रीडा करते हुये राजा की दृष्टि उस शूर शूकर पर पड़ी। वह थूथड़ी इधर-उधर चला रहा था, निरन्तर बादल के समान घोर घर्घर शब्द कर रहा था, गुच्छाकार पूंछ ऊपर उठाये था। ऐसा लगता था मानो दूसरा दावाग्निदग्ध पहाड़ हो। राजा ने उसे देखते ही फुर्ती से शरसंधान करके उस पर बाणों की बौछार कर दी। दोनों का ऐसा द्वन्द्व युद्ध हुआ कि पृथ्वी काँप उठी, पर्वत हिल गये, क्षणभर के लिये सूर्य भी घोड़ों को रोक कर दर्शक वन गया। जैसे-तैसे शूकरराज की जीत हुई, थक कर चूर हुआ राजा एक सालवृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। मकरन्द-बिन्दु-वर्षी शीतल पवन उसे सुख देने लगे।

अचानक एक पथिक वहाँ आया और राजा को देख विस्मय के साथ सोचने लगा कि लक्षणों से तथा तेज से यह कोई समुद्र-वसना भूमि का भर्ता प्रतीत होता है। यह सोच उसने उसके समीप जा अपनी कान्ति से कामदेव को भी जीतने वाले आपका कल्याण हो' यह कहा। राजा ने भी विस्मित हो, मस्तक कुछ ऊपर उठा स्वागतप्रश्न से उसका अभिनन्दन किया, यह कहकर कि यात्री-जनों को अनेक आश्चर्यजनक बातें देखने का अवसर प्राप्त होता है, उससे कोई अपूर्व घटना सुनाने का आग्रह किया।

तब उसने समीप बैठकर कहना आरम्भ किया—दक्षिण दिशा के मुख का तिलकभूत विदर्भ नाम का एक देश है वह ऐसा प्रशस्त है कि भगवान् शूलपाणि शिवजी वहाँ आकर श्री पर्वत पर निवास करते हैं। वहाँ की धान की क्यारियों से परिपूर्ण कावेरी तट की भूमियाँ स्वर्गलोक के समान कमनीय प्रतीत होती हैं और सबसे बढ़कर यह है कि वहाँ सुख की आयतन, मृगनयनी, रसिक स्त्रियाँ होती हैं। वहाँ मैं सुगन्धित गन्धमादन पर्वत पर निवास करने वाले भगवान् स्कन्धदेव का दर्शन करने गया था। जब वहाँ से लौट रहा था तो मार्ग में थक कर एक वटवृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। इतने में ही अत्यन्त सुन्दरी कोई राजपुत्री अपनी प्रौढ़ सखियों सहित वहाँ आयी और उसने भी उसी वटवृक्ष की छाया में आश्रय लिया। मैं उसके सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो सोचने लगा

कि यह साक्षात् लक्ष्मी या पार्वती ही तो नहीं है। आपके सम्मुख उसकी कान्ति का मैं क्या वर्णन करूँ। उसकी एक-एक विशेषता को वही वर्णित कर सकता है, जिसके मुख में सर्पराज के समान दो सहस्र जिह्वायें हों।

उसी वटवृक्ष के नीचे, उसकी एक उत्तरवासी पथिक से भेंट हुई जो दक्षिण दिशा की ओर जा रहा था। जैसे आपने कोई अपूर्व वार्ता सुनाने का प्रश्न किया है वैसे ही उस राजपुत्री ने उस पथिक से किया। पथिक उसके सम्मुख किसी उदीच्य राजा की प्रशंसा कर रहा था। मैंने उनके वार्तालाप का केवल अन्तिम भाग सुना और वह यह था—'उस मुस्कराते मुख वाले, रूप के समान दीर्घ भुजयुगल वाले, कामदेव सदृश युवक का दर्शनलाभ जिन्होंने किया है वे धन्य हैं। तू सर्वथा उसके योग्य है।' बस मैंने इतना सुना। मैं नहीं जानता कि वह कौन भाग्यवान् है जिसकी उसने इस प्रकार प्रशंसा की थी। मैं भी विस्मय के कारण अपना विवेक खो बैठा था, जो कि मैंने उस राजपुत्री के विषय में कुछ भी नहीं पूछा कि वह कौन है, किसकी पुत्री है, कहाँ से आई है, कहाँ जा रही है ? आपने कोई अपूर्व वार्ता सुनाने को कहा था, वह मैंने सुना दी। मेरा तो उस दिशा में उस राजपुत्री को तथा इस देश में आपको देखकर जन्म सफल हो गया है। अब मुझे अपने देश को जाने की अनुमती दीजिये।

पथिक के मुख से यह वृत्तान्त सुन राजा उस राजपुत्री के प्रति आकृष्ट हो विचारने लगा—"क्या सम्भव नहीं है ? परन्तु आश्चर्य तो यह है कि मैंने कभी उसका रूपवैभव देखा नहीं, तो भी लोहा जैसे चुम्बक की ओर खिच जाता है, वैसे ही मेरा मन अधीर हो उसके प्रति आकृष्ट हो रहा है।' अन्त में अपने सब आभूषण उतार कर उसने उस पथिक को दे दिये तथा कुछ देर और वार्तालाप करके किसी प्रकार उसे विदा किया। स्वयं भी शिकारियों सहित राजा अपने निवास-स्थान को लौट आया। तब से लेकर उस राजपुत्री (दमयन्ती) के प्रति वह उत्सुक रहने लगा और पुनरपि पथिकों से उसका वृत्तान्त पूछते हुये तथा शिवजी के चरण-सरोजों की वन्दना करते हुये उसके वर्षा-ऋतु के दिन व्यतीत होने लगे।

———

नलचम्पूः

(दमयन्तीकथा)

प्रथम उच्छ्वासः

जयति गिरिसुतायाः कामसंतापवाहि-
न्युरसि रसनिषेकश्चान्दनश्चन्द्रमौलिः।
तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीना-
मसकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥१॥

पार्वती के काम संताप को धारण करने वाले वक्षःस्थल पर जो चन्दन-जल के सेचन रूप हैं, उन चन्द्रमौलि शिवजी की जय हो तदनन्तर कीर्तिशाली कवियों के निरन्तर अमृत-बिन्दु वर्षी वाग्विलासों की जय हो।

मङ्गलं कामयमानः कविश्चन्द्रमौलिं कविवाग्विलासांश्च स्तौति गिरिसुतायाः हिमालयतनूजायाः कामसंतापवाहिनि कन्दर्पपीडाधारिणी उरसि वक्षसि चान्दनो मलयजसम्बन्धी रसनिषेको [illegible]भिषेकः चन्द्रमौलिः सुधांशुशेखरः शिवो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। तदनु च तदनन्तरं च कीर्तिभाजां यशस्विनां कवीनां वाल्मीकि-व्यास-कालिदासादीनां काव्य-काराणाम् असकृद् निरन्तरम् अमृतबिन्दून् पीयूष-लवान् स्यन्दयन्ति वर्षन्तीति तादृशां वाग्विलासा वाणीविभ्रमाः विजयन्ते महिमान्विता भवन्ति। रूपकालङ्कारः। मालिनी वृत्तम्।

जयति मधुसहायः सर्वसंसारवल्ली-
जननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः।
तदनु पुनरपाङ्गोत्सङ्गसंचारितानां
जयति तरुणयोषिल्लोचनानां विलासः ॥२॥

समस्त संसाररूपी लता की उत्पत्ति के लिए जो कठोर कन्द रूप हैं, उन वसन्त-सखा किन्हीं अपूर्व कन्दर्पदेव की जय हो। तदनन्तर अपांगों तक संचारित तरुणी-नयनों के विलासों की जय हो।

अथ कन्दर्पदेवं स्तुवन्नाह । मधुसहायो वसन्तसखः, सर्वः सम्पूर्णः संसारं जगदेव वल्ली वल्लरी तस्या जनने समुत्पादने जरठकन्दः कठोर बीजवद् विद्यमानः—सर्वजगदुत्पत्तिहेतुरित्यर्थः, कोऽपि कश्चन अपूर्वः कन्दर्पदेवः कामदेवः जयति सर्वोत्कर्षं भजते । तदनु पुनस्तदनन्तरं च, अपाङ्गोत्सङ्गे नेत्रप्रान्तक्रोडे संचारितानां प्रवर्तितानां तरुणयोषिल्लोचनानां तरुणयोषितां युवतीनां यानि लोचनानि नयनानि तेषां विलास कटाक्षादिविभ्रमो जयति विजयं लभते। परम्परितरूपकालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ।

> अगाधान्तःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम् ।
> वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं वहत् ॥३॥

अन्तःकरण में अगाध चमत्कार को लाने वाले, देवों या पण्डितों के आनन्द-मन्दिर, (शृङ्गारादि) रसों के वैशिष्ट्य से प्रौढ़, प्रवृत्त होते हुए सरस्वती (वाग्देवी) के स्रोत की मैं वन्दना करता हूँ. जैसे जिसके अन्दर अगाध भवरें रहती हैं पक्षिश्रेष्ठ राजहंसों का जो आनन्द-मन्दिर है और जो भूमि (रसा) के अन्दर प्रवाहित है, उस सरस्वती नदी के बहते हुए स्रोत की वन्दना (स्तुति) की जाती है।

अथ सारस्वतं स्रोतः स्तौति । अगाधान्तः परिस्पन्दम् अगाधोऽपरिमितः अन्तर्मनसि परिस्पन्दश्चमत्कारो येन तादृशम्, विबुधानन्द-मन्दिरं विबुधानां देवानां पण्डितानां वा आनन्दमन्दिरं हर्षहेतुकम् रसान्तरप्रौढम् रसानां शृङ्गारादिनाम् अन्तरेण वैशिष्ट्येन प्रौढं संसारं, वहत् प्रवर्तमानं सारस्वतं स्रोतो भारतीप्रवाहं, वन्दे नमस्करोमि । नदीपक्षे—अगाधा गम्भीरा अन्तर्मध्ये परिस्पन्दा आवर्ता यस्य तादृशं, विषु पक्षिषु वुधाः श्रेष्ठा राजहंसास्तेषाम् आनन्दमन्दिरं हर्षस्थानम्, रसाया भूम्या अन्तरे अभ्यन्तरे प्रौढं कृतप्रवाहं वहत् प्रसरत् सारस्वत स्रोतः सरस्वत्या नद्याः प्रवाहं वन्दे स्तौमि । अत्र शब्दशक्तिमूलेन ध्वनिना नदीपरोऽर्थः सूचितः सन्नुभयोरुपमानोपमेयभावमभिव्यनक्ति । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

> प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।
> भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥४॥

पुण्यों से ही किसी के मुख में प्रसादगुणयुक्त, कान्तिनामक शब्दगुण तथा अर्थगुण से मनोहर और नाना प्रकार श्लेष (विविध शब्दश्लेष तथा अर्थ-श्लेष)

को विशेष रूप से प्रकट करने वाली वाणियाँ तथा घर में प्रसन्न रहने वाली, लावण्य से मन को हरने वाली और नानाप्रकार के आलिङ्गनों में चतुर स्त्रियाँ होती हैं।

पुण्यशालिनामेव मुखे काव्यवाचो भवन्तीत्याह। पुण्यैः पावन-कर्मभिरेव कस्यचित् कस्यचन धन्यस्य मुखे वक्त्रे प्रसन्नाः प्रसादगुणयुक्ताः कान्तिहारिण्यः कान्तिरौज्ज्वल्यरूपः शब्दगुणो दीप्तरसत्वरूपोऽर्थगुणश्च तेन हारिण्यो मनोहराः, नानाश्लेष-विचक्षणाः नाना बहुविधो यः श्लेषः श्लेषालङ्कारस्तं विशेषेण चक्षते प्रकटयन्तीति तादृश्यो वाचः सूक्तयः, गृहे भवने च प्रसन्नाः हृष्टाः कान्तिहारिण्यः कान्त्या लावण्येन हारिण्यो मनोज्ञाः, नाना-आश्लेष विचक्षणाः नाना बहुविधो य आश्लेष आलिङ्गनं तत्र विचक्षणा निपुणाः स्त्रियो नार्यो भवन्ति जायन्ते। श्लेषालङ्कारः। अत्र वाचः स्त्रिय इवेत्युपमानोपमेयभावो व्यज्यते। अनुष्टुप् वृत्तम्।

> किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
> परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥५॥

कवि के उस काव्य से क्या जो दूसरे के (श्रोता के) हृदय में (अन्तःस्थल में) लग कर (चमत्कार से) उसके सिर को न घुमा दे और धनुर्धर के उस बाण से क्या जो दूसरे के (शत्रु के) हृदय में (वक्षस्थल में) लग कर (पीड़ा से) उसके सिर को न भन्ना दे।

तदेव वस्तुतः काव्यं यदपूर्वरसप्रस्रवेण श्रोतुः शिरश्चालयतीत्याह। कवेः काव्यकर्तुस्तेन तथाविधेन काव्येन रसात्मकवाक्येन, धनुष्मतो धानुष्कस्य च तेन काण्डेन तथाविधेन शरेण किं किं प्रयोजनम्, यत् काव्यं काण्डं च परस्येतरस्य श्रोतुः शत्रोश्च हृदयेऽन्तःकरणे वक्षसि च लग्नं संसक्तं सत् शिरो न घूर्णयति मूर्धानं न चालयति—एकत्र रसवशादपरत्र च पीडावशात्। यथा धनुर्धरस्य स एव शरो यथार्थतः शरो यो हि रिपोरुरस्थलं विभिद्य दुःसहपीडया तस्य शिरः प्रकम्पयति, तथा कवेस्तदेव काव्यं वस्तुतः काव्यमुच्यते यच्छ्रोतुर्हृदयं रसनिर्भरं विधाय परमानन्दसन्दोहेन तस्य शिरश्चालयतीति भाव। अनुष्टुब् वृत्तम्।

> अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।
> सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥६॥

कुछ कवि बालकों के समान पदप्रयोग में अप्रगल्भ, जनों में नीरसता के हेतु तथा बहुल निःसारोक्तियाँ कहने वाले होते हैं, जैसे बालक पैर रखने में अप्रगल्भ, जननी के अनुराग के हेतु तथा बहुत लार पीने वाले होते हैं।

अथ कुकविनिन्दाव्याजेन विपरीतगिरामग्राह्यत्वमाह। एके कवयः केचन काव्यकर्तारो वालका इव पदन्यासे शब्दप्रयोगे अप्रगल्भा अपटवः जननीरागहेतवो जनानां लोकानां नीरागे रागाभावे हेतवः कारणभूताः, बहुलालापाः बहुलः प्रचुर आलापो निःसारोक्तिविन्यासो येषां तथाविधाश्च सन्ति विद्यन्ते। बालका अपि— पदन्यासे चरणनिक्षेपे अप्रगल्भा अपटवः जननीरागहेतवो जनन्या मातुः रागस्यानुरक्तेर्हेतवः कारणभूताः, तथा बहु-लाला-पाः बह्वीः प्रचुराः लालाः सृणिकाः पिबन्तीति तादृशा भवन्ति। श्लिष्टोपमालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

अक्षमालापवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा।
ब्राह्मीव दौर्जनी संसद्वन्दनीया समेखला ॥७॥

रुद्राक्षमाला फेरने का ज्ञान रखने वाली, कुशा का आसन स्वीकार करने वाली, मेखला धारण करने वाली, ब्राह्मणों की सभा जैसे वन्दनीय (नमस्करणीय) है, वैसे ही अक्षमापूर्ण आलाप के व्यवहार से परिचित, कुत्सित शिक्षण स्वीकार करने वाली, साधुओं के साथ भी दुष्टता करने वाली दुर्जनों की सभा वन्दनीय (दूर से ही परिहरणीय) है।

विप्र संसद् वन्दनीया, कायद्वेषिणी दुर्जनसंसच्च वर्जनीयेत्याह। अक्षमाला-अपवृत्तिज्ञा अक्षमालाया रुद्राक्षस्रजोऽपवर्त्तिं करे सञ्चालनं जानातीति तादृशी, कुश-आसन-परिग्रहा कुशासनस्य दर्भविष्टरस्य परिग्रहः स्वीकारो यया तादृशी, स-मेखला मेखलया मौञ्ज्या सहिता ब्राह्मी संसदिव विप्रसभेव, अक्षमा-आलाप-वृत्ति-ज्ञा अक्षमया रोषेण य आलापः संभाषणः तस्य वृत्तिं व्यवहारं जानातीति तादृशी, कु-शासन परिग्रहा कुशासनस्य कुत्सितशिक्षणस्य परिग्रहः स्वीकारो यया तादृशी, तथा समे खला समे साधावपि खला दुष्टा दौर्जनी संसद् दुर्जनसभा वन्दनीया नमस्करणीया दूरतः परिहरणीयेत्यर्थः। श्लिष्टोपमालङ्कारः। अत्र शब्दमात्रेण साम्यं वस्तुतस्तु महदन्तरम्। अनुष्टुब् वृत्तम्।

रोहणं सूक्तिरत्नानां वृन्दं वन्दे विपश्चिताम्।
यत्सङ्गपतितो नीचः काचोऽप्युच्चैर्मणीयते ॥८॥

मैं उन विद्वद्वृन्द को नमस्कार करता हूँ जो सुभाषित रूपी रत्नों के उत्पत्ति-स्थान हैं, और जिनके मध्य में पहुँचकर (उनकी समालोचना से) तुच्छ काव्य भी उच्च मणि के समान निखर उठता है, जैसे प्रशस्त रत्नों के उत्पादक उस रोहणादि की वन्दना (स्तुति) की जाती है, जिसके मध्य में पड़कर तुच्छ काँच भी उच्च मणि प्रतीत होने लगता है।

अथ विपश्चिद्वृन्दं नमस्करोति । सूक्तरत्नानां सूक्तानि सुभाषितान्येव रत्नानि मणयस्तेषां रोहणमुत्पत्तिस्थानं विपश्चितां विदुषां कवीनां वृन्दं समाजं वन्दे नमस्कुर्वे, यन्मध्यपतितो तेषां हस्तगतो नीचस्तुच्छोऽनुत्कृष्टगुणः काचोऽपि कच्यन्ते ग्रथ्यन्ते अर्था अस्मिन्निति काचः काव्यं सोऽपि उच्चैर्मणीयते उच्चमणिवदाचरति—यतो हि ते विपश्चितोऽनुत्कृष्टमपि प्रबन्धमपूर्वव्याख्यानेनोत्कर्षं लम्भयन्तीत्यर्थः । पक्षान्तरे सूक्तरत्नानां सुप्रशस्तमणीनां रोहणमुत्पत्तिशैलं वन्दे प्रशंसामि, यन्मध्यपतितो वदभ्यन्तरगतो नीचः क्षुद्रः काचोऽपि 'कांच' इत्याख्यः क्षार-मृद्विकारोऽपि उच्चैर्मणीयते समुत्कृष्टमणितां, प्राप्नोति । अत्र विपश्चिद्रोहणशैलयोरुपमानोपमेयभावो व्यज्यते । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य च ।
क्व सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥६॥

अत्रि मुनि से (उनके नेत्र से) उत्पन्न चन्द्रमा की तथा तीन से नहीं किन्तु एक ही जनक से उत्पन्न सज्जन की जो मूर्ति है, वह रात्रि से उत्पन्न अन्धकार की तथा तीन से उत्पन्न (अनिश्चित जनक वाले) दुर्जन की भला कहाँ हो सकती है, क्योंकि पहली तो वैर-रहित (अवैरा) है तथा दूसरी वैर-प्रधान (वैरा) है। [अर्थात् चन्द्रमा तथा सज्जन की मूर्ति तो वैर-रहित सर्वप्रिय है तथा अन्धकार और दुर्जन की मूर्ति वैर-प्रधान अप्रिय है। अतः सज्जन तथा दुर्जन दोनों में बहुत अन्तर है। दुर्जन गुणों में भी दोष देखते हैं। एवं मेरे काव्य में भी दोष ही देखेंगे]।

सज्जनदुर्जनयोर्महदन्तरमिति निरूपयन्नाह । अत्रि-जातस्य अत्रिमुनिसंभूतस्य-तन्नेत्रोत्पन्नस्येत्यर्थः—शशिनश्चन्द्रस्य, अ-त्रि जातस्य न त्रिभिर्जातस्य परमेकेनैव जनकेनोत्पन्नस्य सज्जनस्य च साधोश्च या-अवैरा या वैर-रहिता मैत्र्यात्मिका मूर्तिस्तनुर्भवति, सा रात्रिजातस्य निशायामुत्पन्नस्य तमसो ऽन्धकारस्य त्रिजातस्य

त्रिभिर्जातस्य—अनिश्चितजनकस्येत्यर्थः—दूर्जनस्य च असाधोश्च क्व कुत्र भवति, यतोहि सा वैरा वैरप्रधाना। शशिनः सज्जनस्य चाऽवैरा, तमसो दुर्जनाश्च वैरं दर्शयिष्यन्तीति भावः। अत्र शशिसज्जनयोस्तमोदुर्जनयोश्च परस्परमुपमानोपमेयभावो व्यज्यते। अनुष्टुब् वृत्तम्।

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः समेऽमतिः।
सर्वथासुरसंबद्धं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥१०॥

निश्चित ही वह कोई सुरापायी, अकुलीन तथा साधुजनों के प्रति मत्सर रखने वाला है जो सर्वथा सुरस, सुवद्ध काव्य का अभिनन्दन नहीं करता; जैसे, निश्चित ही वह कोई देव, पृथ्वीवासी नहीं अपितु स्वर्गवासी तथा [विष्णु-भक्त होता है जो सर्वथा असुरों से जा मिले शुक्राचार्य का अभिनन्दन नहीं करता। [देवों और असुरों का युद्ध उपस्थित होने पर शुक्राचार्य असुरों के पुरोहित बने थे इस कथा की ओर यहाँ संकेत है]।

यः सुरसम्पि काव्यं नाभिनन्दति स मद्यपं इवापेक्ष्य इत्याह। यो जनः। सर्वथा सर्वप्रकारेण सुरसं शोभना रसाः शृङ्गारादयो यत्र तादृशं बद्धं रचितं काव्यं कविवाक्यं नाभिनन्दति न प्रशंसति स निश्चितं नियतमेव कोऽपि कश्चन ससुरः सुरया मद्येन सहितः—मद्यप इत्यर्थः, न कुलीनः प्रशस्तकुलोत्पन्नः तथा च समे साधुजनेऽपि अमतिरनुकूलमतिरहितो भवति। पक्षान्तरे—यो जनः सर्वथा सर्वप्रकारेण असुरसम्बद्धम् असुरैर्दैत्यैः सम्बद्धं मिलितं काव्य शुक्राचार्यं नाभिनन्दति न प्रशंसति, निश्चितं नियतमेव स कोऽपि कश्चन न कु-लीनः न कौ पृथिव्यां लीनः कृतनिवासो भवतीति तादृशः स्वर्गस्थ इत्यर्थः, समेमतिः मा लक्ष्मीः इःकामस्ताभ्यां सहित समेः विष्णुस्तत्र मतिः सेवाबुद्धिर्यस्य तादृशः—विष्णु-सेवक इत्यर्थः सुरो देवो भवति। सुराणाम्-असुराणां च युद्धे समुपस्थिते देवा बृहस्पतिमसुराश्च शुक्राचार्यं पौरोहित्येन वृतवन्त इति कथात्रानुसन्धेया (द्रष्टव्यम्, महाभारते आदिपर्वणि, ७६ अ०)। अनुष्टुब् वृत्तम्।

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥११॥

जिसने दूषणयुक्त होती हुई भी निर्दोष, खर-युक्त होती हुई भी सुकोमल रम्य रामायणी कथा की रचना की, उस (कवि वाल्मीकि) को नमस्कार करता

हैं। [यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है, विरोध पक्ष में दूषण तथा खर का अर्थ क्रमशः दोष तथा तीक्ष्णता है और परिहार पक्ष में दूषण तथा खर नाम वाले राक्षस जिनके राम द्वारा वध किये जाने का वृत्तान्त रामायण के आरण्यकाण्ड में वर्णित है]।

आद्य कवि वाल्मीकि स्तौति। येन कविना वाल्मीकिना सदूषणाऽपि निर्दोषा दोषसहिताऽपि दोषरहितेति विरोधः, परिहारपक्षेदूषणनामकेन राक्षसेन सहिता निर्दोषा च, सखराऽपि सुकोमला खरेण कठोरतागुणेन सहिताऽपि सुकोमला समृद्धी इति विरोधः, परिहारपक्षे खराख्येन रक्षसा सहिता, सुकोमला सुकोमल-वर्णविन्यासवती च, रम्या रमणीया रामायणी कथा रामायणाख्या कथा कृता रचिता तस्मै नमः तं नमस्करोमि। विरोधाभासोऽलङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स हिमवानिव।
सृष्टा गौरीदृशी येन भवे विस्तारिभारता ॥१२॥

क्षमाशीलों में श्रेष्ठ वह वेदव्यास हिमालय के समान वन्दनीय हैं, जिन्होंने ऐसी वाणी (गौ) की रचना की जिसका भारताख्यान संसार में विस्तीर्ण हो गया है; जैसे, हिमालय भूधरों में श्रेष्ठ है तथा उसने ऐसी गौरी (पार्वती) को जन्म दिया है जो विस्तीर्ण कान्ति वाली है तथा शिव में अनुरक्त हैं।

अथ महाभारतकारो वेदव्यासः स्तूयते। हिमवानिव हिमालय इव क्षमाभृतां श्रेष्ठः, क्षमाशालिनामुत्तमः स व्यासोऽसौ कृष्णद्वैपायनो वेदव्यासो वन्द्यो नमस्कार्यः, येन भवे संसारे ईदृशा विलक्षणा विस्तारिभारता विस्तरणशीलं भारतं महाभारताख्यानं यस्यास्तथाविधा गौर्वाक् सृष्टा रचिता। हिमवानपि—क्षमाभृतां श्रेष्ठो भूधराणामुत्तमो वन्द्यो नमस्कार्यश्च, येन हिमवता ईदृशी अनुपमा विस्तारिभा विस्तारिणी विस्तरणशीला भा कान्तिर्यस्याः सा भवे रता शिवेऽनुरक्ता गौरी पार्वती सृष्टा जनिता। श्लिष्टोपमालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तकृष्णार्जुनविलोचना।
करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेव भारती ॥१३॥

कर्णप्रान्तपर्यन्त विलासपूर्वक अपने कृष्ण तथा धवल लोचनों को घुमाने वाली कान्ता के समान महाभारती कथा किसे आह्लाद नहीं देती, जिस कथा

में कर्ण का वध होने पर कृष्ण और अर्जुन हर्ष से नाच उठते हैं तथा धृतराष्ट्र शोकवश चक्कर खाकर गिर पड़ते हैं।

त्रैदव्यासस्य भारतीकथा कान्तेव कं नाह्लादयतीत्याह। कर्णान्तयोः श्रोत्रप्रान्तयोः विभ्रमेण विलासेन भ्रान्ते चञ्चले कृष्णार्जुने श्यामधवले विलोचने नेत्रे यस्यास्तादृशी कान्तेव सुन्दरीव, कर्णस्य राधवस्य अन्ते वधे विभ्रमेण भ्रान्ताः कृष्णो वासुदेवः अर्जुनः पार्थः विलोचनो धृतराष्ट्रश्च यस्यां तादृशी भारती कथा महाभारतकथा कस्य आह्लाद हर्षं न करोति न विधत्ते। महाभारतेऽर्जुनशरेण कर्णे हते हृष्टौ कृष्णार्जुनौ रथमारुह्य गरुडस्य भ्रमेण रहसा रणाजिरे विचरितुं प्रवृत्तौ, धृतराष्ट्रश्च विभ्रमेण शोकेन भ्रान्तो घूर्णितशिरस्कः सन् भुवि पपातेति कर्णपर्वणि द्रष्टव्यम्। श्लिष्टोपमालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः॥१४॥

निरन्तर बाणभट्ट कवि सहित अगर्वित आकारधारी, (बृहत्कथा के रचयिता) गुणाढ्य कवि से सब जन अनुरंजित होते हैं, जैसे निरन्तर बाण सहित, वक्र आकारधारी, प्रत्यञ्चा युक्त धनुष से सब (शत्रु जन) पर्याप्त रूप से विजित होते हैं।

अथ बाणभट्टसंहितो गुणाढ्यकविः प्रशंस्यते। धनुषेव चापेनेव शश्वद् निरन्तरं बाणद्वितीयेन महाकविबाणभट्टसहितेन, न मदाकारधारिणा न मदाकारं गर्विताकृतिं धरतीत्येवंशीलेन गुणाढ्येन बृहत्कथाकारेण गुणाढ्यकविना निःशेषो जनः समग्रलोको रञ्जितः प्रमोदं प्रापितः। धनुःपक्षे—शश्वद् बाणद्वितीयेन शरसहितेन नमद्-आकारधारिणा वक्राकृतिधरेण गुणाढ्येन मौर्वीयुक्तेन धनुषा चापेन, निःशेषो जनः समग्रः शत्रुवर्गः अरम् अत्यर्थं जितः पराजितो भवति। श्लिष्टोपमालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कवीनाममी,
विद्वांसः परिपूर्णकर्णहृदयाः कुम्भाः पयोभिर्यथा।
वाचो वाच्यविवेकविकलधियामीदृग्विधा मादृशां,
लप्स्यन्ते क्व किलावकाशमथवा सर्वंसहा सूरयः॥१५॥

इस प्रकार विद्वज्जन, जलों से परिपूर्ण कलशों के समान, इन पूर्वोक्त (वाल्मीकि, व्यास आदि) कवियों के काव्य, कथा तथा कथानकों के रसों से परिपूर्ण श्रोत तथा हृदय वाले हैं, (तो फिर) वाच्य के विवेक में अकुशल बुद्धि वाले मुझ जैसों की ऐसी (सामान्य कोटि की) वाणियाँ भला कहाँ अवकाश पायेंगी ? अथवा विद्वज्जन सब सह लेने वाले होते हैं, (अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिये, वे मेरी वाणियों को भी सह लेंगे)।

एषां प्राक्तनकवीनां रुचिरं काव्यरसमास्वादितवन्तोऽपि विद्वांसो मत्काव्येऽपि कथंचन रुचिं दर्शयिष्यन्त्येवेत्याह। इत्थम् एवम् अमी एते विद्वांसो विपश्चितः पयोभिः कुम्भा यथा सलिलैः कलशा इव एषां पूर्वोक्तानां वाल्मीकिव्यासादीनां कवीनां काव्यकाराणां काव्य-कथा कथानक रसैः काव्यानि नाटकादीनि कथाः कादम्बर्यादयः कथानकान्याख्यानकानि तेषां रसैः परिपूर्णकर्णहृदयाः परिपूर्णान्याः पूरितानि कर्णौ श्रोत्रे हृदयं चित्तं च येषां तादृशाः सन्ति [कुम्भपक्षे—परिपूर्णे आपूरिते कर्णं ऊर्ध्वभागो हृदयं मध्यभागश्च येषां तादृशाः]। अतो मादृशां मद्विधानां वाच्य-विवेक-विक्लवधियां वाच्यस्याभिधेयस्य विवेकेऽवधारणे विक्लवा अकुशला धीर्बुद्धिर्येषां तेषाम् इदृग्विधा एवंप्रकारा अग्रे प्राच्यमाना वाचो गिरः क्व किल कुत्र खलु अवकाशं स्थानं लप्स्यन्ते प्राप्स्यन्ति ? अथवा यद्वा सुख्यो विद्वांसः सर्वसहाः सर्वं शुभमशुभं वा सहन्ते मर्षयन्तीति तादृशा भवन्ति। अतो मया वाचः प्रवर्तनीया एवेति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥१६॥

सभंग श्लेष की विशेषता से वाणियाँ कठिन हो जाती हैं। पर उससे उद्विग्न नहीं होना चाहिये, क्योंकि कवि का एक ही रस नहीं होता (वह कहीं काव्य को कठिन और कहीं कोमल रचता है, जिससे रसास्वाद दुष्कर नहीं होता)।

सभङ्गश्लेषेण यद्यदि काव्ये काठिन्यमायाति तथापि तत्रोद्वेगो न कार्य इत्याह वाच काव्यगिरो भङ्गश्लेषविशेषतः भङ्गश्लेषस्य भङ्गश्लेषालङ्कारस्य विशेषतो वैशिष्ट्यात् काठिन्यं दुर्बोधत्वम् आयान्ति प्राप्नुवन्ति। तत्र तस्मिन्

काव्ये उद्वेगश्चित्तखेदो न कर्तव्यो नो विधेयः, यस्मात् ततो हि कवेः काव्यकर्तुः एको रसो न एकविधैव रुचिर्न भवति । स हि स्वकाव्ये क्वचित् काठिन्यं, क्वचिच्च कोमलत्वं जनयति, अतः काव्यस्वादो न दुष्कर इत्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च ।
बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥१७॥

जैसे कोमल तथा कठोर आम्रफल का उसके अवयव-संगठन (बन्धन) तथा (हरी-पीली-लाल आदि) छाया की विशेषता से रस भी भिन्न-भिन्न प्रकार का (खट्टा, मीठा आदि) हो जाता है वैसे ही कोमल तथा कठोर काव्य का भी पद-रचना (बन्ध) तथा व्यङ्ग्यार्थ (छाया) की विशेषता से रसास्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है ।

काव्यं रसालफलेनोमिमीते । आम्रफलस्येव रसालफलस्येव कोमलस्य कोमलस्य प्रसादगुणयुक्तस्य इतरस्य च तद्भिन्नस्य जटिलस्य च काव्यस्य काव्यग्रन्थस्य बन्धच्छायाविशेषेण बन्धस्य उद्धतकोमलादिरचनायाः छायाया व्यङ्ग्यार्थस्य च विशेषेण भेदेन रसोऽपि शृङ्गारवीरादिरपि अन्याशदृशो भिन्नो भवेत् जायेत । यथाहि—कोमलस्य मृदुनः इतरस्य च कठोरस्य च आम्रफलस्य बन्धच्छायाविशेषेण बन्धोऽवयवसंघटनं छाया रक्तपीतादिकान्तिश्च तयोर्विशेषेण भेदेन रसोऽपि रसपदार्थोऽपि अन्यादृशो मधुराम्लतिक्तादिरूपो विभिन्नो भवति । श्लिष्टोपमालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

कविवंशादिवर्णनम्

अस्ति समस्तमुनिमनुजवृन्दवृन्दारकवन्दनीयपादारविन्दस्य भगवतो विधेर्विश्वव्यापिव्यापारपारवश्यादवतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वंशः ।

समस्त मुनि-मनुज-गण तथा देवों से वन्दनीय चरणकमल वाले भगवान् ब्रह्माजी के विश्वव्यापी व्यापार के कारण संसार-चक्र में अवतीर्ण, याज्ञिक कर्मकाण्ड में दक्ष, शाण्डिल्य नामक महर्षि का वंश था ।

कविः स्ववंशपरिचयं प्रयच्छन्नाह । समस्तेन सकलेन मुनिनाम् ऋषीणां मनुजानां मानवानां च वृन्देन समूहेन वृन्दारकैर्देवैश्च वन्दनीये पूजनीये पादारविन्दे

चरणकमले यस्य भगवतः श्रीमतो विधेर्विधातुः; विश्वव्यापी सकललोकव्यापी यो व्यापारः क्रिया तत्पारवश्यात् तत्पारतन्त्र्यात्, संचारचक्रे भुवनमण्डले अवतीर्णस्य गृहीतजन्मनः, क्रतुर्यज्ञस्य क्रियाकाण्डे कर्मपद्धतौ शौण्डस्य दक्षस्य, शाण्डिल्यनाम्नः, शाण्डिल्याख्यस्य महर्षेर्महामुनेर्वंशः कुलम् अस्ति वर्तते।

श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिदनूचानाः शुचयः सत्यवाचो विरिञ्चिवर्चसोऽर्चनीयाचारा ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः। पुण्यजनाश्च न च येऽलङ्कापुरुषाः ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च नाच ये लम्पाकाः, कामवर्षाश्च न च ये लङ्घनाः सन्मार्गस्य, नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महाभारतिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः।

(उसमें (अलङ्कार के लिये) श्रोत्र में धारण करने योग्य चन्दनपल्लवों के समान उपदेश-श्रवण-योग्य कुछ साङ्गवेदाध्यायी, पवित्र, सत्यवक्ता, ब्रह्मतेजोयुक्त, अर्चनीय आचरण वाले, ब्रह्मवित् ब्राह्मण सुने जाते हैं। जो पुण्यात्मा जन थे, कायर पुरुष नहीं थे। विरोध पक्ष में—राक्षस थे, पर लङ्का-पुरुष नहीं थे), यज्ञोपवीतधारी थे, लम्पट नहीं थे विरोध—सूत के बुने थे, पर पट नहीं थे), प्रसिद्ध थे, लफंगे नहीं थे (विरोध--रंधे हुए थे, पर पके नहीं थे), कामवर्षी थे, सन्मार्ग का उल्लंघन करने वाले नहीं थे (विरोध—इच्छानुसार वर्षा करने वाले थे, पर मेघ नहीं थे) तरुण थे, पर (अग्निहोत्री होने से) लम्बे केश नहीं रखते थे (विरोध—अल्पवयस्क थे, पर बालक नहीं थे), महाभारत की कथा बाँचने वाले थे, राजोपजीवी नहीं थे (विरोध—महानट थे, पर रंगोपजीवी नहीं थे), जलपूर्ण सरोवरों का सेवन करते थे, भययुक्त नहीं थे (विरोध—सब अप्सराओं का भोग करने वाले थे, तो भी रम्भा नामक अप्सरा से युक्त नहीं थे)।

यत्र यस्मिंश्च शाण्डिल्यवंशे श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव कर्णावतंसीकरणयोग्या मलयजकिसलया इव श्रवणोचिता आकर्णनयोग्याः केचित् केवल अनूचानाः साङ्गवेदपाठिनः शुचयः पवित्राः, सत्यवाचोऽवितथवचसः, विरञ्चिवर्चसः परमेष्ठिप्र[illegible] अर्च[illegible]याचाराः प्रशस्याचरणा ब्रह्मविदो ब्रह्म[illegible]सारो ब्राह्मणा विप्राः श्रूयन्ते आकर्ण्यन्ते। (पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः) ये च पुण्यजनाः राक्षसाः

सन्ति, परं लङ्कापुरुषाः लङ्कावासिनो नेति विरोधः। पुण्यजनाः पवित्रजनाः च चये अलम् अत्यर्थं कापुरुषाः कुत्सिता पुमांसः इति परिहारः 'अथ पुण्यजनो यक्षे राक्षसे सज्जनेऽपि च' इति कोशः। (ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः) ससूत्रास्तन्तुभिः संहिताः सन्ति, परं ये अलम् अत्यन्तं पटा वस्त्राणि नेति विरोधः। ससूत्रा यज्ञोपवीतिनः न च य लम्पटा धूर्ता इति परिहारः। (प्रसिद्धाश्च न च ये लम्पाकाः) प्रकर्षेण सिद्धा अग्निना संस्कृता अपि ये अलम् अत्यर्थं पाकाः पक्वा नेति विरोधः। प्रसिद्धाः प्रख्याताः, न च ये लम्पाका लम्पटा इति परिहारः। (कामवर्षाश्च न च ये लङ्घनाः सन्मार्गस्य सन्मार्गस्य कामवर्षा यथेच्छ वर्षणशीलाः सन्ति न च ये अलम् अत्यर्थं घना मेघा इति विरोधः। कामवर्षा अभिलषितदातारश्च न च सत्पथस्य लङ्घना अतिक्रमणशीला इति परिहारः। (नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः) नववयसोऽल्पायुषोऽपि न ये अलम् अत्यन्त बालकाः शिशव इति विरोधः। नववयसस्तरुणावस्था अपि न ये लम्बालका दीर्घकेशा अग्निहोत्रित्वाद् इति परिहारः। (महाभारतिकाश्च न ये रङ्गोपजीविनः) महाभारतिका महान्तो नटाः सन्ति, न च ये रङ्गोपजीविनोऽभिनयवृत्तय इति विरोधः। महाभारतिका महाभारतकथावाचकाः, न च ये अलम् अत्यर्थं गोपजीविनः गां भूमिं पाति रक्षतीति गोपो राजा, तस्माज्जीवन्ति तद्दत्तमन्नादिकं भुञ्जते इति तादृशाः 'राजान्नं तेज आदत्ते' इति दोष श्रवणात्, इति परिहारः। सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः) सेविता भुक्ता अप्सरसः सकलदेवाङ्गना यैस्तादृशोऽपि, ये रम्भया तन्नाम्न्या अप्सरसा अन्विता युक्ता नेति विरोधः। सेवितानि अपां सरांसि जलपूर्णाः सरोवरा यैस्तादृशा अपि ये अलम् अत्यर्थं भयान्वितास्त्रासयुक्ता नेति परिहारः। अत्र सर्वत्र श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासोऽलङ्कारः।

किं बहुना।

जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम्।
वेत्ति विश्वंभरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम् ॥१८॥

बहुत क्या, उन जैसे ही उन जैसों के गुणों का गान करना जानते हैं। जैसे विश्व को अपने ऊपर उठाने वाली भूमि ही पर्वतों के गुरुताहेतुक भार को जानती है।

किं बहुनाऽधिकेन किम् । तद्विधा एव शाण्डिल्यवंशोत्पन्नप्रियजनतुल्या एव, तादृशां तथाविधानां समस्तगुणगरिमयुक्तानां, गुणान् दयादाक्षिण्यादीन् वक्तुं हि वर्णयितुं किल जानन्ति विदन्ति । गिरीणां पर्वतानां गरिमाश्रयं गुरुत्वहेतुकं भार भरं विश्वंभरा धरित्री एव वेत्ति जानाति । प्रतिवस्तूपमालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

तेषां वंशे विशदयशसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्,
देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः ।
उत्कल्लोलादिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं,
यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति ॥१९॥

उन धवल कीर्ति वाले ब्राह्मणों के वंश में श्रीधर का पुत्र देवादित्य हुआ, जिसकी बुद्धि में वेदविद्या द्वारा विवेक का विकास था और जिसकी उत्तरंगित कीर्ति पीयूष की नदी को आज भी प्रत्येक दिशा में लोग अर्धनिमीलित नेत्रों के साथ श्रोत्र के साथ श्रोत्र-पुटकों से पान करते हैं ।

तद्वंशे श्रीधरस्यात्मजो देवादित्यो नाम विप्रो जन्म लेभे इत्याह । विशदयशसां निर्मलकीर्तिनां तेषां शाण्डिल्यब्राह्मणानां वंशे कुले स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः स्वमतौ निजबुद्धौ विकसन् प्रकाशमानो वेदविद्यया श्रुतिज्ञानेन विवेकः कर्त्तव्याकर्तव्यबोधो यस्य तादृशः श्रीधरस्यात्मजः श्रीधरनाम्नो विप्रस्य तनयो देवादित्यो देवादित्याख्यः अभूदजायत । यस्य देवादित्यस्यदिशि दिशि प्रतिदिशम् उत्कल्लोलाम् उत्तरङ्गितां कीर्तिपीयूषसिन्धुम् यशोमृतनदीम् अद्यापि सम्प्रत्यपि जना मनुजाः कूणिताक्षाः सुखात् किञ्चिन्निमीलितनेत्राः सन्तः, श्रवणपुटकैः श्रोत्रचषकैः पिबन्ति आस्वादयन्ति । रूपकालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।
तस्मादस्मि सुतो जातो जाडयपात्रं त्रिविक्रमः ॥२०॥

उन उन अपने गुणों से जो त्रिलोकी का तिलक रूप था, उस (देवादित्य) से मैं मन्दबुद्धि त्रिविक्रम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ हूँ ।

तस्यैव देवादित्यस्याहं सुत इत्याह । तैस्तैः प्रसिद्धैः आत्मगुणैः निजगुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिः येन देवादित्येन त्रिलोक्यास्त्रिभुवनस्य तिलकायितं तिलक-

वदाचरितम् तस्माद् देवादित्यात्, अहं जाड्यपात्रं मन्दधीः त्रिविक्रम एतन्नामा सुतः पुत्रो जातोऽस्मि समुत्पन्नोऽस्मि। धर्मलुप्तोपमालङ्कार। अनुष्टुब् वृत्तम्।

सोऽहं हसायितुं मोहाद् बकः पङ्गुर्यथेच्छति।
मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥२१॥

जैसे मोहवश कोई पंगु बगला हंस बनना चाहे, वैसे ही वह मन्द-बुद्धि मैं कविश्रेष्ठ बनना चाह रहा हूँ।

स्वकवित्वाभिमानं निराकरोति। सोऽहं मन्दधीः तादृशोऽहं जडबुद्धिस्त्रिविक्रमो यथा यद्वत् पङ्गुर्भग्नचरणो बको बकपक्षी मोहाद् मौर्ख्याद् हंसायितुं हंस इवाचरितुम् इच्छत्यभिलषति, तद्वत् तथैव कविवृन्दारकायितुं कविवृदारक इव कविश्रेष्ठ इवाचरितुम् इच्छामि वाञ्छामि। उपमालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया।
दुर्गस्तरीतुमारब्धो बाहुभ्यामम्भसां पतिः ॥२२॥

दुष्कर सभंगश्लेषमयी कथा रचना करते हुए मैंने भुजाओं से दुर्गम समुद्र तैरना आरम्भ किया है। अर्थात् यह मेरा कार्य वैसा ही हास्यास्पद है जैसा भुजाओं से दुर्गम समुद्र को पार करने का यत्न करना।

सभङ्गश्लेषेण कथारचनं मम बाहुभ्यां समुद्रतरणमिवेत्याह। मया त्रिविक्रमेण दुष्करं क्लेशसाध्य भङ्गश्लेषकथाबन्धं भङ्गश्लेषेण सभङ्गश्लेषेण कथाबन्धं कथारचनं कुर्वता रचयता, दुर्गो दुर्गमः अम्भसां पतिर्जलधिः। बाहुभ्यां भुजाभ्यां तरीतुं संतर्तुम् आरम्भः उपक्रान्तः। यथा बाहुभ्यां दुर्गस्य जलधेस्तरणं हास्यास्पदं, तथैव दुष्करं भङ्गश्लेषमाश्रित्य नलदमयन्तीकथानिरूपणं मम हास्यास्पदमित्यर्थः। निदर्शनालङ्कारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

उत्फुल्लगल्लैरालापः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम्।
जानाति हि पुनः सम्यक् कविरेव कवेः श्रमम् ॥२३॥

दुर्मुख जन भले ही गाल फुला कर निन्दा की बातें करते रहते हैं, पर ठीक-ठीक कवि के श्रम को कवि ही जानता है।

कविरेव कवेः प्रयासं जानातीत्याह। दुर्मुखैर्दुष्टवदनैः उत्फुल्लगल्लैरापूरितकपोलैः सद्भिः सुखं स्वैरम् आलापा निन्दात्मिका आलोचना एव क्रियन्ते

विधीयन्ते। वस्तुतस्तु कविरेव पुनः यः स्वयं काव्यकर्त्ता स एव हि कवेः काव्यकर्तुः श्रमं प्रयास जानात्यवगच्छति—तन्मूल्यमङ्कयतीत्यर्थः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

संगता सुरसार्थेन रम्या मेरुचिराश्रया।
नन्दनोद्यानमालेव स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥२४॥

देव समूह से संगत, रम्य, मेरु पर्वत पर चिरकाल से आश्रित नन्दनोद्यानमाला का जैसे स्वर्गस्थ देव आलोकन करते हैं, वैसे ही सुरस अर्थ से संगत, रम्य रुचिर नलोपाख्यान पर आश्रित मेरा कथा का लोग स्वस्थचित्त होकर आलोकन करें।

मद्रचितां रुचिरां नलदमयन्तीकथां सहृदयाः स्वस्थमनोभिरालोकन्तामित्याह। सुरसारथेन सुरसः शोभनश्रृङ्गारादिरसोपेतो योऽर्थस्तेन संगता युक्ता, रम्या रमणीया मे मम रुचिराश्रया रुचिरो मनोहर आश्रयो नलोपाख्यानरूप आधारो यस्यास्ताद्दृशी कथा वर्ण्यमानेयं नलदमयन्तीकथा, नन्दनोद्यानमालेव देवराजोपवनपंक्तिरिव स्वस्थैः स्वस्थचित्तैः—सावधानैरित्यथः आलोक्यतां विमृश्यताम्। यथा सुर सार्थेन संगता देवसमूहेन सहिता, रम्या मनोहारिणी, मेरु चराश्रया मेरौ सुरगिरौ चिराद् बहुकालाद् आश्रयो निवासो यस्याः सा नन्दनोद्यानमाला स्वस्थैः स्वर्गस्थैर्देवैरालोक्यते इत्यर्थः। श्लिष्टोपमालङ्कार। अनुष्टुब् वृत्तम्।

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥२५॥

उदात्तनायक से युक्त तथा (ओज, प्रसाद आदि) गुणों वाले पद्यों व गद्यों से युक्त चम्पू को कौन हृदय में धारण नहीं करता ? और उत्कृष्ट मध्यमणि से युक्त तथा सूत्र में पिरोये हुए वृत्ताकार मोतियों से युक्त हारलता को कौन वृक्षःस्थल पर धारण नहीं करता ? [एवं मेरी इस नलचम्पू को भी सहृदय जन अवश्य हृदय में धारण करेंगे ऐसी आशा है]।

चम्पूं हारलतां च सर्वोऽपि हृदि दधातीत्याह। उदात्तनायकोपेता उदात्तेन धीरोदात्तगुणवता नायकेन नेत्रा उपेता सहिता, गुणवद्वृत्त- मुक्तक्तका गुणवन्ति ओज प्रसादादिगुणयुक्तानि वृत्तानि पद्यानि मुक्तकानि गद्यानि च यस्यां सा

चम्पूश्च 'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते' इति लक्षणोपेता रचना च, उदात्तनायकोपेता उदात्तेन महार्घेण नायकेन मध्यमणिना उपेता, गुणवद्वृत्तमुक्तका गुणवत्यः सूत्रप्रोता वृत्ता वर्तुला मुक्तका मुक्ताफलानि यत्र सा हारयष्टिश्च मौक्तिकमालालता च केन हृदि चित्ते वक्षसि च न क्रियते न धार्यते। अतो मद्रचितां नलचम्पूमपि सर्वोऽपि हारयष्टिवद् हृदि धारयत्विति भावः। अत्र चम्पूहारयष्ट्योः प्रस्तुताप्रस्तुतयोरेकधर्मसम्बन्धवर्णनाद् दीपकं, तच्च श्लेषमूलम्। अनुष्टुब् वृत्तम्।

आर्यावर्तवर्णनम्

अस्ति समस्तविश्वंभराभोगभास्वल्ललामलीलायमानः, समानः सेव्यतया नाकलोकस्य, ग्राम्यकविकथाबन्ध इव नीरसस्य मनोहरः, भीम इव भारतालङ्कारभूतः, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाग्रणीः सर्वविषयाणाम्, अनधीतव्याकरण इवादृष्टप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्णविकारः, पशुपतिजटाबन्ध इव विकसितकनककमलकवलयोच्छलितरजःपुञ्जपिञ्जरितहंसावतंसया प्रकुपितचलच्चकोरचक्रवाककारण्डवमण्डलीमण्डिततीरया भगीरथभूपालकीर्तिपताकया स्वर्गगमनसोपानवीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलैः प्लावितश्चन्द्रभागालंकृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम्, आरामो रामणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं संपदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्यमर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः

आर्यावर्त नाम का देश है। वह समस्त भूमि के विस्तार पर चमकते हुए तिलक के समान प्रतीत होता है। सेव्यता में स्वर्गलोक के समान है। नीर और सख्य से मनोहर है, जैसे ग्राम्य कवि का कथाबन्ध नीरस व्यक्ति के लिए मनोहर होता है। भारतवर्ष का अलङ्कारभूत है, जैसे भीम महाभारत का अलङ्कार है। सब देशों का अग्रणी है, जैसे कान्ता के कुचमण्डल का स्पर्श सब विषयभोगों का अग्रणी होता है। वहाँ प्रजा का पतन, उपद्रव, चोरी तथा (ब्राह्मणादि) वर्णों में विकार नहीं दिखाई देता, जैसे जिसने व्याकरणशास्त्र नहीं पढ़ा उसे प्रकृति, निपात, उपसर्ग, लोप तथा वर्ण-विकार के दर्शन

नहीं होते। वह शिवजी के जटाजूट के समान गङ्गा द्वारा पुण्य जलों से उछले हुए पराग पुञ्ज से पिंजरित हंस कर्णाभूषण हैं, जिसके अनेक चंचल चकोर, चक्रवाक तथा कारण्डवों की मण्डलियों से मण्डित हैं, जो भगीरथ राजा की कीर्तिपताका है और जिसकी चंचल तरंगे स्वर्ग-गमन की सोपान-पंक्ति के समान प्रतीत होती है उस आर्यावर्त का एक देश चन्द्रभागा नदी से अलंकृत है, जैसे शिवाजी का जटाजूट चन्द्रकला से अलंकृत है. वह समस्त संसारचक्र का सार है, पुण्यकर्त्ताओं का शरण-स्थान है, रम्यता रूपी कदलीवन का उद्यान है, धर्म का धाम है, सम्पत्तियों का पात्र है, कल्याणों का आश्रय है, सद्व्यवहार रूपी रत्नों की खान है, आर्यमर्यादा के उपदेशों का गुरुकुल है।

अथ कथामारभमाण आर्यावर्तं वर्णयति। समस्ताया विश्वंभराया धरित्र्या आभोगे शरीरे भास्वत् दीप्यमानं यत् ललामं तिलकं यस्य लीलां विलासमाचरतीति तादृशः। सेव्यतया भोग्यतया नाकलोकस्य स्वर्गलोकस्य समानः सदृशः। ग्राम्यस्य ग्रामीणस्य कवेः काव्यकर्तुः कथाबन्ध इव कथाप्रबन्ध इव (नीरसस्य मनोहरः) नीरेण सलिलेन सस्येन धान्येन च मनोहरो रम्यः, पक्षे नीरसस्य रसानभिज्ञस्य पुरुषस्य मनोहरः। भीमः इव वृकोदर इव (भारतालङ्कारभूतः) भारतस्य भारतवर्षस्य अलङ्कारभूतो भूषणभूतः, पक्षे भारतस्य महाभारतस्य अलंकारभूतः। कान्ताया रमण्याः कुचमण्डलस्य पयोधरचक्रवालस्य स्पर्श इव संसर्ग इव (सर्वविषयाणाम् अग्रणीः) समस्तदेशानां प्रधानभूतः, पक्षे समस्तकामोपभोगानां प्रधानभूतः। अनधीतव्याकरण इव अपठितव्याकरणशास्त्र इव अदृष्टो न वीक्षितः प्रकृतीनां प्रजानां निपातोऽधोगमनम् उपसर्ग उपद्रवो लोपः स्तेयं वर्णविकारश्चातुर्वर्ण्यमर्यादाभङ्गश्च यत्र तादृशः, पक्षे न दृष्टाः प्रकृतयो धात्वादयो निपाताश्चोदयः उपसर्गा प्रादयो लोपा वर्णविनाशाः वर्णविकारा अक्षरविकृतयश्च यत्र तादृशः। पशुपतिजटाबन्ध इव शंकरजटाजूट इव विकसितानि प्रस्फुटितानि यानि कनककमलानि स्वर्णारविन्दानि कुवलयानि नीलोत्पलानि च तेभ्य उच्छलितेन निर्गतेन रजः पुञ्जेन परागपटलेन पिञ्जरिता पिङ्गलवर्णीकृता हंसाः कादम्बा एव अवतंसाः कर्णभूषणानि यस्याः सा तया, प्रचुरं चलन्तो ये चकोराश्चक्रवाकाः कारण्डवाच पक्षिविशेषाः तेषां मण्डल्या चक्रेण मण्डितं शोभितं तीरं तटं यस्या सा तया, भगीरथभूपालकीर्तिपताकया

भगीरथनृपयशोवैजयन्त्या, स्वर्गगमनाय नाकलोकारोहणाय सोपानवीथीयमाना सोपानपङ्क्तय इव आचरन्तो रिङ्खन्तश्चञ्चलास्तरङ्गा वीचयो यस्याः सा तया गङ्गया भागीरथ्या पुण्यसलिलैः पावनजलैः प्लावितः सिक्तः चन्द्रभागालंकृतैक-देशश्च चन्द्रभागया नद्या अलंकृतो भूषित एकदेशः प्रान्तविशेषो यस्य तादृशः, पक्षे—चन्द्रभागेन हिमांशुकलयाऽलंकृत एकदेश एकभागो यस्य तादृशः । सकल-संसारचक्रस्य समस्तभुवनमण्डलस्य सारस्तत्त्वभूतः पुण्यकारिणां शुभकर्मकर्तॄणां शरण्य आश्रयप्रदः, रामणीयक-कदलीवनस्य रामणीयकं सौन्दर्यमेव कदलीवनं रम्भासमूहस्तस्य आराम उद्यानम्, धर्मस्य सदाचारस्य धाम निवासस्थानम्, सम्पदां सम्पत्तीनाम् आस्पदं पात्रम्, श्रेयसां कल्याणानाम् आश्रय आधारः, साधुव्यवहाररत्नानां सद्व्यवहारमणीनाम् आकरः खानिः, आर्यमर्यादोपदेशानाम् आर्यमर्यादायाः श्रेष्ठजनस्थितेर्ये उपदेशा ज्ञानवचनानि तेषाम् आचार्यभवनं गुरुकुलम् आर्यावर्तो नाम आर्यावर्ताख्यो देशो राष्ट्रम् अस्ति वर्त्तते । ललाम-लीलायमान इत्यत्र ललामार्यावर्तयोरूपमानोपमेयभाववर्णनात् क्यङुपमा । समानः सेव्यतयेत्यत्र पूर्णोपमा । ग्राम्यकवीत्यारभ्य चन्द्रभागालंकृतैकदेशश्चेति यावत् सर्वत्र श्लेषानुप्राणितोपमानां संसृष्टिः । सारः सकलेत्यत्र रूपकम् । आरामो रमणीयकेत्यत्र परम्परितरूपकम् । तथैव आकरः, आचार्यभवनमित्य-त्रापि । किं च, सारः सकलसंसारचक्रस्येत्यादौ रूपकोल्लेखयोरङ्गाङ्गिभावोऽपि वर्तते, एकस्यैवानेकधोल्लेखात् ।

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिव्यतिकराः पुरुषायुष-जीविन्यः सकलसंसारसुखभाजः प्रजाः । तथा हि, कुष्ठयोगो गान्धिकाप-णेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, संनिपातस्तालेषु, ग्रहसंक्रान्तिर्ज्योतिः-शास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसम्बन्धश्चण्डिकायत-नेषु दृश्यते न प्रजासु ।

वहाँ की प्रजाएँ निरन्तर धर्मकर्मों के उपदेश से शान्त समस्त व्याधियों वाली, पूरी पुरुष की आयु जीने वाली तथा सकल सांसारिक सुखों की भागिनी हैं । उदाहरणार्थ गान्धियों की दुकानों पर कुष्ठ औषधि रहती है, प्रजाओं में कुष्ठ रोग नहीं रहता । वैयाकरणों में स्फोट सिद्धान्त की चर्चा होती है,

प्रजाओं में फोड़े की चर्चा नहीं होती। तालों में संनिपात (दोनों हाथों का मिलना) होता है, प्रजाओं में संनिपात रोग नहीं होता। ज्योतिः शास्त्रों में गृहों की संक्रान्ति (मेषादि राशियो में प्राप्ति) वर्णित होती है, प्रजाओं में हथकड़ी की संक्रान्ति नहीं होती। सांख्यशास्त्रों में भूतविकारवाद (प्रकृति से महदादि की उत्पत्ति का सिद्धान्त) पाया जाता है, प्रजाओं में भूत-प्रेत से उत्पन्न विकार की चर्चा नहीं पायी जाती। तिथियों में क्षय (ह्रास) होता है, प्रजाओं में क्षय रोग नहीं होता। वनभूमियों में लताकुञ्जों की वृद्धि होती है, प्रजाओं में तिल्ली की वृद्धि नहीं होती। मछलियों का गला पकड़ा जाता है, प्रजाओं के गले में फांसी नहीं दी जाती। पर्वतीय वनभूमियों में गैंडों का उत्थान देखा जाता है प्रजाओं में फोड़े-फुंसियों का उत्थान नहीं दिखाई देता। चण्डी के मन्दिरों में त्रिशूल का सम्बन्ध पाया जाता है, प्रजाओं में शूलरोग या शूली पर चढ़ना नहीं पाया जाता।

यस्मिन्नार्यावर्ते प्रजा जनाः, अनवरतं निरन्तरं धर्माणां पुण्यचरितानां कर्मणां शरीरहिताय कर्त्तुमिष्टानां कार्याणां च उपदेशेन वचनेन शान्ता अपगताः समस्तानां सर्वेषां व्याधीनां रोगाणां व्यतिकराः सम्बन्धा यासां ताः पुरुषायुषजीविन्यः शतायुषः सकलसंसारसुखभाजः सकलं समस्तं संसारसुखं लौकिकानन्दं भजन्ते प्राप्नुवन्तीति तथाविधाः सन्ति। तथा हि कुष्टयोगः कुष्ठस्य कुष्ठोषधस्य योगः सम्बन्धः गान्धिकानां गन्धद्रव्यविक्रतृणाम् आपणेषु निषद्यासु दृश्यते, प्रजासु जनेषु कुष्ठयोगः कुष्ठरोगस्य सम्बन्धो न। स्फोटप्रवादः स्फोटस्य नित्यशब्दात्मकस्य प्रवादो वर्णनं वैयाकरणेषु व्याकरणाध्येतृषु व्याकरणवित्सु च दृश्यते, प्रजासुस्फोटस्य पिटकस्य प्रवादः प्रकथन न। संनिपातः उभयहस्तमेलनं तालेषु करतालवादनेषु दृश्यते, प्रजासु संनिपातः संनिपातरोगो न। ग्रहसंक्रान्ति ग्रहणां सूर्यादीनां संक्रान्तिर्मेषादिराशौ संक्रमणं ज्योतिः, शास्त्रेषु ज्योतिषग्रन्थेषु दृश्यते, प्रजासु ग्रहस्य बन्धनस्य संक्रान्तिर्न। भूतविकारवादः भूतं प्रधानाख्यं तत्त्वं मूलप्रकृतिस्ततो विकारस्य महदादिविकृतेर्वादः सिद्धान्तः सांख्येषु सांख्यमतानुयायिषु दृश्यते, प्रजासु भूतविकारवादः प्रेतजनितविकृतिवर्णनं न तादृशविकृतेः सर्वथाऽभावात्। क्षयो विलयस्तिथिषु दृश्यते, प्रजासु क्षयः क्षयरोगो न। गुल्मवृद्धिः गुल्मानां लतादिकुञ्जानां वृद्धिर्वर्धनं वनभूमिषु काननस्थलीषु दृश्यते,

प्रजासु गुल्मवृद्धिः प्लीहवर्धनं न। गलग्रहो वडिशेन कण्ठग्रहणं मत्स्येषु मीने दृश्यते, प्रजासु गलग्रहो वधार्थं पाशेन गलबन्धनं कण्ठवृद्धिरोगो वा न। गण्डकोत्थानं गण्डकानां खड्गिनाम् उत्थानम् उत्थितिः पर्वतानां शैलानां वनभूमि विपिनस्थलीषु दृश्यते, प्रजासु गण्डकानां ह्रस्वस्फोटकानाम् उत्थानं न। शूल सम्बन्धः शूलस्य त्रिशूलस्य सम्बन्धो योगः चण्डिकायतनेषु भवानीमन्दिरे दृश्यते, प्रजासु शूल सम्बन्धोऽसह्यपीडायोगः शूलारोपणं वा न। कुष्ठयोग इत्यारम्भ सर्वत्र श्लेषानुप्राणितः शाब्दः परिसंख्यालङ्कारः।

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव ग्रामाः, तुरङ्गसकलभवना सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि सदानभोगाः प्रभञ्जना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव वनानि विटपिहिताश्चेटिका इव वाटिकाः, निर्वृतिस्थानानि सुकलत्राणीवेक्षुक्षेत्र सत्त्राणि, जलाविलक्षणाः पशुपुरुषाः इवाप्रमाणास्तडागभागाः, कुपित कपिकुलाकुलिता लङ्केश्वरकिङ्करा इव भग्नकुम्भकर्णघनस्वापाः कूपाः पीवरोधसः सरित इव गावः, सतीव्रतापदोषाः सूर्यद्य तप इव कुलस्त्रियः।

वहाँ के ग्राम चतुर गोपालकों से शोभित हैं, जैसे संग्राम घोड़ों (तुरंगों) से सुशोभित होते हैं। नगर प्रदेश सर्वत्र ऊँचे-ऊँचे भवनों से शोभित हैं, जैसे पर्वत पुंनाग वृक्षों के करिशावक युक्त वनों से शोभित होते हैं। पुर सदाचार मण्डित है, जैसे नूपुर सदा चरण के मण्डन होते हैं। लोग दान तथा भोग करने वाले हैं, जैसे वायुएँ सदा आकाश में गमन करने वाली होती हैं। वन पियाल (चरौंजी) तथा कटहल के वृक्षों से युक्त है जैसे यौवनप्रिया के साथ आलाप रूपी सार से युक्त होते हैं। वाटिकाएँ तरुओं के लिये हितकर है, जैसे चेटिकाएँ विटों से पिहित (धूर्तों से घिरी हुई) होती हैं। गन्ने के खेतों की दान-शालाएँ बाढ़रहित अतएव सुख जैसे बैठने योग्य है, ये उत्तम पत्नियाँ सुख का स्थान होती है। जलाशय प्रदेश जल से पंकिल तीर वाले तथा अपरिमेय हैं, जैसे पशु-तुल्य पुरुष जड़, लक्षणहीन तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण को न मानने वाले होते हैं। कुए कुपित वानरों से विक्षोभित, टूटे हुए घड़ों के कानों से युक्त तथा गहरे शुभ

टूटे कण्ठवाले सुन्दर गहरे जलवाले घड़ों से समान बंद

जल वाले हैं, जैसे लंकाधिपति रावण के अनुचर कुपित वानरों से आकुलित तथा कुम्भकर्ण की गहरी नींद को तोड़ने वाले थे। गौएं स्थूल ऊधस् वाली हैं, जैसे सरिताएँ स्थूल तट वाली होती हैं। कुलस्त्रियाँ सतीव्रत से नष्ट (मुक्त) दोष वाली हैं, जैसी सूर्यद्युतियाँ तीव्र तापदोष वाली होती हैं।

यत्र च यस्मिन्नार्यावर्ते च, तुरगोपशोभिताः तुरगैरश्वैरुपशोभिता राजिताः संग्रामा इव समरा इव चतुर-गोप-शोभिताः चतुरैः कुशलैः गोपैर्गोपालकैः शोभिताः ग्रामा आवसथाः सन्ति। तुङ्ग-सकलभवताः तुङ्गानां पुंनागानां ('पुंनागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभः' इत्यमरः) सकलभानि करिशावक-सहितानि वनानि विपिनानि यत्र तादृशाः नगा इव पर्वता इव सर्वत्र समस्त-प्रदेशेषु तुङ्ग-सकल-भवनाः तुङ्गानि गगनचुम्बीनि सकलानि समस्तानि भवनानि गृहाणि यत्र तादृशाः नगरप्रदेशाः पुरोद्देशाः सन्ति सदा-चरण-मण्डलानि सदा सर्वदा चरणमण्डनानि पादभूषणभूतानि नूपुराणीव पादकटकानीव, सदाचरण-मण्डनानि सदाचरणं सदाचार एव मण्डनं भूषणं येषां तथाविधानि पुराणि नगराणि सन्ति। सदानभोगाः सदा नभसि आकाशे गच्छन्ति प्रवहन्तीति तादृशाः प्रभञ्जना इव समीरणा इव, स-दानभोगा दानभोगाभ्यां त्यागोपभोगाभ्यां सहिता जनाः प्रजाः सन्ति। प्रियाआलपनसाराणि प्रियया प्रियतमया सह आलपनं सकामोल्लापः एव सारस्तत्त्वं येषु तानि यौवनानीव तारुण्यानीव, प्रियालपन-साराणि प्रियालान् राजादनानि (राजादनं प्रियालः स्यादित्यमरः) पनसान् कण्टकिफलानि च इयुर्ति प्राप्नुवन्तीति तादृशानि वनान्यरण्यानि सन्ति। विट-पिहिताः विटैर्धूर्तचेष्टैः पिहिता आलिङ्गिताः चेटिका इव दानस्य इव विटपि-हिता विटपिनो वृक्षास्तेभ्यो हिता वाटिका उपवनानि सन्ति। निर्वृतिस्थानानि सुखास्पदानि सुकलत्राणीव सुभार्या इव, निर्-वृत्ति-स्थानानि निर्वृत्या वृतेरभा-वेन स्वच्छन्दं स्थीयते यत्र तथाविधानि इक्षुक्षेत्रसत्राणि इक्षुक्षेत्रेषु रसालक्षेत्रेषु सत्राणि दानशालाः सन्ति। जडा जडबुद्धयो विलक्षणा लक्षणहीनाः—असंस्कृता इत्यर्थः अप्रमाणा आगमादिप्रमाणरहिताः पशुपुरुषा इव पशुतुल्यः पुमांस इव जलाविलक्षणाः जलेन पयसा आविलाः पङ्किलाः क्षणा अवतारादितीरप्रदेशा येषां तादृशा अप्रमाणा अपरिमिताः तडागभागा जलाशयस्थलानि सन्ति। कुपित-कपिकुलाकुलिताः कुपितैः क्रुद्धैः कपिकुलैर्वानरसैन्यैराकुलिता उद्वेजितः, भग्न-

कुम्भकर्ण-घन-स्वापाः भग्नो विच्छिन्नः कुम्भकर्णस्य तन्नाम्नो रावणानुजस्य गाढः स्वापो निद्रा यैस्तादृशा लङ्केश्वरकिङ्करा इव, रावणसेवका इव, कुपि कपिकुलाकुलिताः कुपितैः कपिकुलैः कूपोपरिस्थितवृक्षशाखानिषण्णैर्वानरैः आकुलिताः पत्रादिपातनेन विक्षोभिताः भग्न-कुम्भकर्णाः भग्नाः स्फुटि कुम्भानां घटानां कर्णाः कण्ठा यत्र तादृशाः, घनस्वापाः घनाः प्रचुराः स्वाः कीयाः पातालमूलोत्थाः शोभना वा आपो जलानि येषु तादृशाश्च कूपाः उदपा सन्ति । पीव-रोधस, पीव स्थूलं रोधस्तटं यासां ताः सरित इव नद्य इव पी ऊधसः पीवरं स्थूलं ऊध आपीनं यासां तादृश्यो गावो धेनवः सन्ति । स तीव्र ताप-दोषाः तीव्रस्तीक्ष्णः तापः आतप एव दोषस्तेन सहिताः सूर्यद्युतय इव दिव कर प्रभा इव सतीव्रतअपदोषाः सतीव्रतेन साध्वीनियमेन अपगता दोषाः कल यासां ताः कुलस्त्रियः कुलाङ्गनाः सन्ति । श्लिष्टोपमालङ्कारः ।

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वास्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिताः कादम्बरी गद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः ।

और वहाँ के खेतों की क्यारियाँ मनोहर सरल-युगल से युक्त और बैल की जोड़ी वाले स्वामी पुरुष से अधिष्ठित रहती हैं तथा उनमें प्रचुर धा (व्रीहि) दिखाई देते हैं, जैसे (बाणभट्ट रचित) कादम्बरी की गद्य-रचनायें मनो सार वाली द्वन्द्व समास युक्त तथा तत्पुरुष और द्विगु समास से अधिष्ठित औ उसमें बहुव्रीहि समास भी दृष्टिगत होता है ।

यत्र च यस्मिश्चार्यावर्ते मनोहारिसारसद्वन्द्वाः मनोहारिसाराः रमणीयाः गद्वन्द्वा द्वन्द्वसमाससहिताश्च, तत्पुरुषेण तत्पुरुषसमासेन द्विगुना द्विगुसमासे नाधिष्ठिता युक्ताः दृश्यमानबहुव्रीहयः दृश्यमानोवीक्ष्यमाणो बहुव्रीहिसमा येषु तादृशाः कादम्बरीगद्यबन्धा इव बाणभट्टरचितकादम्बरीकथाया गद्यरच इव मनोहारिसारसद्वन्द्वाः मनोहारीणि चित्ताकर्षकाणि सारसानां सारसपक्षि द्वन्द्वानि युगलानि यत्र तादृशाः द्विगुना द्वौ गावौ बलीवर्दौ यस्य तादृशेन तत्पुरुषे तत्स्वामिना चाधिष्ठिता अधिश्रिताः, दृश्यमान-बहु-व्रीहयो दृश्यमाना बहव व्रीहयो धान्यानि येषु तादृशाः केदाराः परिष्कृतक्षेत्राणि सन्ति । अत्र श्लेषानु

णितोपमापरिपुष्टा रत्नावली यस्यां क्रमेण सर्वे समासा ग्रथिताः 'क्रमिकं प्रकृतीर्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः' इति कुवलयानन्दोक्तलक्षणात् ।

किं बहुना ।

> नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।
> दृश्यते न च यत्र स्त्री नवा पीनपयोधरा ॥२६॥

वहाँ ऐसी कोई नगरी नहीं है जिसमें बावड़ी न दिखाई दे, जल-प्रचुर भूमि न दिखाई दे और जहाँ पीन-स्तनी तरुणी स्त्री न दिखाई देती हों [यहाँ श्लोक के चतुर्थ चरण को स्त्री के समान वापी तथा पयोधरा का भी विशेषण मानें तो, नवा पीनपयोधरा वापी = नूतन, प्रचुर जल बावड़ी; न वापीनपयोधरा पयोधरा = जिसमें किसानों के स्वामी केवल बादल ही नहीं हैं, अपितु नदियों नहरों कूपों से भी सिंचाई होती है ऐसी जलप्रचुर भूमि] ।

किं बहुनाऽधिकोक्तेन किं प्रयोजनम् । यत्र यस्मिन्नार्यावर्ते सा नगरी तादृशी कापि पुरी नास्ति, न वर्तते यत्र यस्यां नगर्यां वापी=दीर्घिका न दृश्यते न हि वीक्ष्यते, पयोधरा सलिलप्रधाना भूमिश्च न दृश्यते, यत्र च नवा तरुणी पीनपयोधरा स्थूलस्तनी च स्त्री कान्ता न दृश्यते । तत्रार्यावर्ते समस्तास्वेव नगरीषु रम्या वाप्यः, पयः प्रचुरा भूमयः, सुन्दर्यः कान्ताश्च सन्तीति भावः । अत्र नवापीनपयोधरेति चतुर्थचरणं यथा कान्ताया विशेषणत्वेन गृहीतं तथा वापीपयोधरोर्विशेषणत्वेनापि ग्रहीतुं सुशकम् । तद्यथा, नवा नूतना पीनपयोधरा प्रचुरजलयुक्ता च वापि । न वापी नपयोधरा—वापिनां बीजवप्तॄणां कर्षकाणाम् इनाः स्वामिनः पयोधरा मेघा यत्र सा वापीनपयोधरा देवमातृका तादृशी न किन्तु नदीमातृका पयोधरा पयः प्रचुरा भूमिः । आर्यावर्तवर्णने नगरीनावौं उभे अपि प्रस्तुते, तयोः श्लेषवशादेकधर्मसम्बन्धवर्णनात् तुल्ययोगिता, पादावृत्ति यमकं चेति तयोरेकाश्रयानुप्रवेशसंकरः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

> भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः ।
> जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः ॥२७॥

वहाँ फाल्गुन मास में (पतझड़ के कारण) वृक्षों की शाखायें पत्र-रहित

(विपल्लवाः) हो जाती हैं, परन्तु लोगों पर कभी विपत्ति के लेश भी (विपत्-लव) नहीं आते ।

अपि च किं च, फाल्गुने मासि तपस्यमासे वृक्षशाखास्तरुविटपा विपल्लवाः विगतपल्लवाः किसलयरहिता भवन्ति सम्पद्यन्ते । न तु न च लोकस्ते जनाः कदापि जातुचित् विपल्लवा विपदामापत्तीनां लवा लेशा अपि जायन्ते भवन्ति । अत्र परिसंख्यापदावृत्तियमकालंकारयोरेकाश्रयानुप्रवेशसंकरः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

२४ यत्र सौराज्यरञ्जितमानसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परारम्भनिर्भराः, सततमकुलीनं कुलीनाः प्राप्तविमानमप्राप्तविमानभङ्गाः कतिपयवसुराजितमनेकवसवः समुपहसन्ति स्वर्गवासिनं जनं जनाः ।

वहाँ उत्तम राज्य से रञ्जित मन वाले, सकल समृद्धि से वर्धित महोत्सव के मनाने में संलग्न लोग स्वर्ग निवासी देवों के उपहसित करते हैं । क्योंकि वहाँ के लोग कुलीन (उच्च-कुलोत्पन्न) हैं, किन्तु देव कुलीन (पृथ्वीवासी) नहीं हैं । वहाँ के लोग विमान (अपमान) का पराजय प्राप्त नहीं करते, पर देव विमान (व्योमयान) को प्राप्त हैं । वहाँ के लोग अनेक वसुओं (ऐश्वर्यों) वाले हैं, किन्तु देव कुछ ही वसुओं (केवल आठ वसुओं) से शोभित हैं ।

यत्र यस्मिन्नार्यावर्ते सौराज्येन शोभनाधिपत्येन रञ्जितानि प्रसादितानि मनांसि चेतांसि येषां तादृशाः, सकलसमृद्धिभिः सकलैश्वर्यैर्वर्धिता वृद्धिं नीता या महोत्सवपरम्परा प्रमोदोत्सवश्रेणिस्तस्या आरम्भे सम्मानने निर्भराः, संलग्नाः; सततं निरन्तरम् अकुलीनं न कौ पृथिव्यां लीनं कृतनिवासं कुलीनाः, सत्कुलोत्पन्नाः; प्राप्तविमानम् अधिगतव्योमयानम् अप्राप्त-विमान-भङ्गाः न प्राप्तो विमानेन तिरस्कारेण भङ्गः पराजयो यैस्तादृशाः; कतिपय-वसु विराजितं कतिपयैरष्टसंख्यकैरेव वसुभिर्विराजितं शोभितम् अनेकवसवः अनेकानि बहूनि वसूनि धनानि येषां तादृशा जनाः प्रजाः स्वर्गवासिनं जनं पूर्वोक्तं नाकलोकनिवासिनं जनं देवसमूहमित्यर्थः समुपहसन्त्यतिक्रामन्ति । अत्रार्यावर्तवासिजनानां कुलीनत्वादिकं स्वर्गवासिनां चाकुलीनत्वादिकं निरूप्य पूर्वेषामुत्कर्षकथनाद् व्यतिरेकः स च श्लेषप्रलोत्थापितः ।

कथं चासौ स्वर्गान्न विशिष्यते। यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः, सश्रीका हरयः, पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः। केवलं न सुराधिपो राजा। न च विनायकः कश्चित्।

और क्यों न वह स्वर्ग से बढ़कर हो। स्वर्ग में एक ही गौरी (पार्वती) है, यहाँ घर-घर में गौरी (गौरवर्णा स्त्रियाँ) हैं। स्वर्ग में ही महेश्वर (शिव) है, यहाँ सभी लोग महेश्वर (अति समृद्ध) हैं। स्वर्ग में एक ही श्रीसम्पन्न हरि (लक्ष्मीपति विष्णु) है, यहाँ अनेक श्रीसम्पन्न हरि (शोभा-सम्पन्न घोड़े) हैं। स्वर्ग में एक ही धनद (कुबेर) लोकपाल है, यहाँ पद-पद पर धनद (धन के दानी) लोक-पालक हैं। बस केवल इतनी कमी है कि यहाँ का राजा सुराधिप (शराबी) नहीं है, जबकि स्वर्ग का राजा सुराधिप (देवों का अधिपति) है। न ही यहाँ कोई विनायक (नायकरहित) है, जबकि स्वर्ग में विनायक (गणेश) है।

कथं च कुतश्च असौ स आर्यावर्त्तः स्वर्गात् देवलोकात् न विशिष्यते न विशिष्टो भवति। यत्र गृहे गृहे प्रतिसदनं गौर्यः स्त्रियो गौरवर्णा नार्यः, स्वर्गे तु एकैव गौरी पार्वती। महेश्वरो महैश्वर्यसम्पन्नो लोकः सर्वं प्रजाजनः स्वर्गे तु एक एव महेश्वरः शिवः। सश्रीकाः शोभान्विता हरयोऽनेके तुरङ्गमाः, स्वर्गे तु एक एव हरिर्विष्णुः सश्रीकः श्रिया लक्ष्म्या सहितः। पदे पदे स्थाने स्थाने धनदा लोकपाला ऐश्वर्यप्रदातारो नृपाः सन्ति, स्वर्गे तु एक एव धनदः कुबेरः। तत्र आर्यावर्त्ते केवलं सुराधिपो राजा मद्यपो नृपो नास्ति, स्वर्गे तु सुराधिपो राजा सुराणां देवानामधिपोऽधिनायक इन्द्रो वर्तते। न च नापि तत्र कश्चित् कोऽपि विनायको नायकरहितो विरुद्धनायको वा, स्वर्गे तु विनायको गणेशो विद्यत एव। अत्रापि पूर्ववद् व्यतिरेक एव। किं च 'यत्र गृहे' इत्यारभ्य 'विनायक कश्चिदि'ति पर्यन्तं सर्वेऽपि वाक्यार्थाः 'कथं चासौ स्वर्गान्न विशिष्यते' इत्यस्य निष्पत्तौ हेतुतां गच्छन्ति, अतः काव्यलिङ्गमपि। तयोरङ्गाङ्गिभाव-संकरः।

यत्र च लतासम्बन्धः कुलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते, न पुरुषेषु। यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्थलीषु श्रूयते, न प्रजासु।

वहाँ वृक्षों में लताओं का सम्बन्ध तथा कलिकाओं का प्रादुर्भाव देखा जाता है, पुरुषों में चंचलता का सम्बन्ध तथा कलह व क्रोध का आक्रमण नहीं देखा जाता। हिमालय की स्थलियों में चमरक मृगों का वृत्तान्त तथा साह हिमपात से उत्पन्न उपघात सुना जाता है, प्रजाओं की मृत्यु का वृत्तान्त तथा दूसरे की महिमा का उपघात नहीं सुना जाता।

यत्र च यस्मिश्चार्यावर्ते लतासम्बन्धो वल्लरीयोगः कलिकोपक्रमश्च कलिकानां कुड्मलानामुपक्रमः प्रादुर्भावश्च पादपेषु वृक्षेषु दृश्यतेऽवलोक्यते, पुरुषेषु जनेषु चलतासम्बन्धश्चाञ्चल्यंयोगः कलि-कोप-क्रमश्च कलेः कलहस्य (संप्रहाराभिसंपातकलिसंस्फोटसंयुगाः' इति कलहपर्यायेष्वमरः) कोपस्य क्रोधस्य च क्रमः प्रादुर्भावो न दृश्यते। यत्र चमरक-वार्ता चमरकाणां चामरमृगाणां वार्ता वृत्तान्तः परम-हिमोपघातश्च परमेण प्रचुरेण हिमेन तुहिनेन उपघात उपद्रवश्च तुहिनाचलस्थलीषु हिमालयभूमिषु श्रूयते समाकर्ण्यते, प्रजासु च जनेषु च मरक-वार्ता अकालमृत्युसमाचारः पर-महिमोपघातश्च परस्यान्यस्य महिम्नो गौरवस्योपघातो विनाशश्च न श्रूयते। श्लेषानुप्राणितः शाब्दः परिसंख्यालङ्कारः।

यश्च नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽप्यनीतिः, सवटोऽप्यवटसंकुलः, कारूपयुतोऽप्यगतरूपशोभः।

और वह आर्यावर्त नीतिमान् पुरुषों से अधिष्ठित है तथा उसमें (अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि) ईतियाँ (उपद्रव) नहीं है (विरोध पक्ष में—नीतिमान् पुरुषों से अधिष्ठित होता हुआ भी नीतिरहित है), उसमें वटवृक्ष हैं, तथा कुएं हैं (विरोध०— वह वटवृक्षों से युक्त होता हुआ भी वटवृक्षों से युक्त नहीं है)। उसमें शिल्पी हैं तथा वह पर्वतों और तरुओं से शोभित हैं (विरोध०—वह कुत्सित रूप वाला होकर भी रूप-शोभा रहित नहीं है)।

यश्चार्यावर्त्तो नीतिमद्भिर्नयवद्भिः पुरुषैर्जनैरधिष्ठित आश्रितोऽपि अनीतिर्नीतिरहित इति विरोधः, अनीतिः न विद्यन्ते ईतयः 'अतिवृष्टिरनावृष्टमूं षकाः शलभाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः' इति षडुपद्रवा यत्र तादृशाः इति परिहारः। सवटो वटैर्न्यग्रोधवृक्षैः सहितोऽपि अवटसंकुलो न वटैर्न्यग्रोधवृक्षैः संकुलो व्याप्त इति विरोधः अवटैः कूपैः संकुलो व्याप्त इति परिहारः। कारूपयुतः कुत्सितरूपयुक्तोऽपि अगत-रूप-शोभाः न गतां नष्टा

रूपशोभा रूपकान्तिर्यस्य स इति विरोधः। कारुभिः शिल्पिभिरुपयुतो युक्तोऽपि अग-तरु-उपशोभः अगैः पर्वतैस्तरुभिर्वृक्षैश्चोपगता शोभा यस्य स इति परिहारः। अत्र श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासोऽलङ्कारः।

यत्र च गुरुव्यतिक्रमं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः, मित्रोदयद्वेषमुलूकाः, अपत्यत्यागं कोकिलाः, बन्धुजीवविघातं ग्रीष्मदिवसाः, कुर्वन्ति, न जनाः।

वहाँ नक्षत्रराशियाँ गुरु (बृहस्पति ग्रह) का उल्लंघन करती हैं, प्रजायें गुरु (आचार्य) का अपमान नहीं करतीं। लेखिकाएं (ह्रस्व, दीर्घादि) मात्रा के विषय में विवाद करती हैं, प्रजायें माता के साथ विवाद (कलह) नहीं करतीं। उल्लू पक्षी सूर्योदय से द्वेष करते हैं, प्रजायें मित्र की उन्नति से द्वेष नहीं करतीं। कोकिलें अपनी सन्तान का (पालनार्थ कौओं के घोंसलों में) त्याग करती हैं, प्रजायें सन्तान का त्याग नहीं करतीं। ग्रीष्म के दिन बन्धु जीव पुष्पों का विघात करते हैं, प्रजायें बन्धुओं के जीवन का विघात नहीं करतीं।

यत्र च यस्मिश्चार्यावर्ते गुरुव्यतिक्रमं गुरुर्बृहस्पतिस्तस्य व्यतिक्रमम् उल्लङ्घनं नक्षत्रराशयः तारापुञ्जरूपा ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धा राशयः कुर्वन्ति विदधति, जनाः प्रजा गुरुव्यतिक्रमम् आचार्यतिरस्कारं न कुर्वन्ति। मात्राकलहं वर्णानां ह्रस्वदीर्घादिमात्राविषये विवादं लेखनकर्मणि व्यापृता नार्यः कुर्वन्ति, जना मात्रा कलहं जनन्या सह विवादं न कुर्वन्ति। मित्रोदयद्वेषं सूर्योद्गमनद्रोहम् उलूका दिवान्धाः कुर्वन्ति, जना मित्रोदयद्वेषं सुहृदुन्नतिद्रोहं न कुर्वन्ति। अपत्यत्यागं सन्तानोज्झनं कोकिलाः पिकाः कुर्वन्ति स्वाण्डानां पालनार्थं काकनीडेषु त्यागात्, जना न। बन्धुजीवविघातं बन्धुजीवाख्यपुष्पविनाशं ग्रीष्मदिवसा निदाघविघात विनाशं न। श्लेषानुप्राणितः शाब्दः परिसंख्यालङ्कारः।

किं बहुना।

देशः पुण्यतमोद्देशः कस्यासौ न प्रियो भवेत्।
युक्तोऽनुक्रोशसम्पन्नैर्यो जनैरिव योजनैः ॥२८॥

बहुत, क्या, पुण्यतम स्थानों वाला वह (आर्यावर्त) देश किसी को प्रिय नहीं होगा, जो जैसे अनुकम्पायुक्त जनों से युक्त है, वैसे ही प्रति कोस पर समृद्ध योजनों से भी युक्त है।

किं बहुना किमधिकेन । असौ स पुण्यतमोद्देशः पुण्यतमाः पावनतमा उद्देशाः प्रदेशा यस्य तादृशो देश आर्यावर्तः कस्य जनस्य प्रियो न भवेत् प्रीतिपात्रं न स्यात्, यः अनुक्रोशसम्पन्नैः अनुकम्पायुक्तैः जनैरिव मनुष्यैरिव अनुक्रोशसम्पन्नैः अनुक्रोशं प्रतिक्रोशं सम्पन्नैरन्नजलवृक्षादिभिः समृद्धैः योजनैश्चतुष्क्रोशीभिः युक्तः समन्वितो विद्यते । अत्रोत्तरार्धवाक्यार्थः पूर्वार्धवाक्यार्थस्य निष्पत्तौ हेतुतां गच्छतीति काव्यलिङ्गम् । उत्तरार्धं श्लिष्टोपमापि । देशः—'देशः, योजनैं योजन' इति यमकेन तयोः सकरः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

निषधापुरी-वर्णनम्

तस्य विषयकस्य मध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः ।
तत्र पुरी पुरुषोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥२९॥

उस देश के मध्य में निषध नाम का प्रसिद्ध जनपद है, उसमें उत्तम पुरुषों के निवास योग्य निषधा नाम की पुरी है, जैसे पुरुषोत्तम (विष्णु) के निवास योग्य जगन्नाथपुरी है ।

तस्यार्यावर्तस्य विषयस्य देशस्य मध्येऽभ्यन्तरे निषधो नाम निषधाख्यः प्रथितः प्रसिद्धो जनपदो मण्डलमस्ति विद्यते । तस्मिन् जनपदे च पुरुषोत्तम-निवासयोग्या पुरुषोत्तमानां तु श्रेष्ठानां निवासयोग्या वासोचिता, निषधेति निषधानाम्नी पुरी नगरी वर्तते, पुरुषोत्तमस्य विष्णोर्निवासयोग्या जगन्नाथपुरी चेति ध्वन्यते तच्चोभयोरुपमानोपमेयभाव व्यनक्ति । अत्र पुर्याः पुरुषोत्तमनिवा-सयोग्यत्ववर्णनात् समालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा ।
सा नगरी नगतनया ग|रीव मनोहरा भाति ॥३०॥

प्रजाओं की नीति से प्रसन्न मन वाले उत्तम राजा से निरन्तर आनन्दित वह नय-सम्पन्न मनोहर नगरी ऐसी शोभायमान है, जैसे प्रसन्न मन वाले कार्तिकेय से 'हे माँ ऐसा सम्बोधन सुनकर आनन्दित हुई हिमालय की पुत्री पार्वती मन को हरती हुई शोभित होती है ।

सा नगरी असौ निषधाख्या पुरी जननि इति हे मातरित्याह्वानपूर्वकं मुदितमनसा प्रसन्नचेतसा सुस्वामिना शोभनेन सुन्दरेण स्वामिना कार्तिकेयेन कृतानन्दा दत्तहर्षा नग-तनया हिमालयपुत्री मनोहरा चित्तहारिणी गौरीव पार्वतीव जन-नीति-मुदित-मनसा जनानां प्रजानां नीत्या नयेन मुदितमनसा हृष्ट-चेतसा सुस्वामिना शोभननृपेण कृतानन्दा दत्तहर्षा, न गतनया न विनष्टनीतिका मनोहरा रम्या च सती सततं भाति निरन्तरं शोभते। श्लिष्टोपमालङ्कारः। आर्यावृत्तम्।

यस्याभ्रंलिहेन्द्रनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालबालशाद्वलाङ्कुराग्रग्रासलालसाः स्खलन्तः खे खेदयन्ति मध्येदिनं सादिनं रविरथतुरङ्गमाः। यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतासु संचरद्गृहिणीचरणालक्तकपदपंक्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरुणारुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि। यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासभवनभव्यभित्तिषु स्वच्छासु स्वां छायामवलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रीशङ्काः कथमपि प्रत्यानीयन्ते प्रियैः प्रियतमाः।

जिसमें गगनचुम्बी इन्द्रनीलमणिनिर्मित भवनों के सहस्रों शिखरों से उठते हुए सूक्ष्म किरणजाल रूपी लघु शष्पांकुराग्रों के भक्षण की लालसा से आकाश में मार्गच्युत होते हुए सूर्यरथ के घोड़े मध्याह्न में अश्वरथारोही सूर्य को खिन्न करते हैं और जिसमें संगमरमर की शिलाओं से जटित भवन-प्रांगणों में जब गृहिणियाँ चलती हैं तो उनके चरणों में लगे लाक्षारस के पदचिह्नों की पंक्तियाँ फर्श पर पड़ जाती हैं, जिन्हें निर्मल जल के अन्दर तैरते हुये ताजे खिले लाल कमल समझ कर उनकी आकांक्षा से मुग्ध भ्रमर उन पर आ-आ कर गिरते हैं। और जिसमें विविध मणियों से निर्मित निवास-भवनों का भव्य स्वच्छ दीवारों पर अपनी छाया देखकर अन्य स्त्रियों की शंका करती हुई प्रियतमाओं को उनके प्रियतम बड़ी कठिनाई से मना पाते हैं।

यस्या निषधाख्यायां नगर्याम् अभ्रलिहानि गगनचुम्बीनि इन्द्रनील-शालानाम् इन्द्रनीलमणिरचितभवनानां यानि शिखरसहस्राणि अनेकशृङ्गाणि

तेषां निभृतांशुजालानि लघुकिरणसमूहा एव वालशाद्वलाङ्कुराग्राणि नूतनशाद्-हरितस्थलशष्पप्रान्तास्तेषां ग्रासे कवलने लालसा सस्पृहाः अत एव स्खलन्तः पतन्तो रविरथतुरङ्गमाः सूर्यस्यन्दनघोटका मध्येदिनं मध्याह्नकाले सादिनं रथिनं सूर्यं खे गगने खेदयन्ति खिन्नतां नयन्ति । यस्यां च यत्र च स्फटिकमणिशिलाभिः स्फटिकमणि प्रस्तरैर्निबद्धानि जटितानि यानि भवनप्राङ्गणानि प्रासादाजिराणि तत्र गतासु प्रतिफलितासु संचरन्त्यो विहरन्त्यो या गृहिण्यो नार्यस्तासां चरणयोः पादयोर्यद् अलक्तकं लाक्षारसस्तस्य पदपङ्क्तिषु चरणचिह्नेषु, निर्मलसलिलस्य स्वच्छनीरस्याभ्यन्तरे मध्ये तरन्ति प्लवमानानि यानि तरुणानि नूतनानि अरुणकमलानि रक्तारविन्दानि तेषां कांक्षया अभिलाषेण, मुग्धा मोहं प्राप्ता ये मधुपा भ्रमरास्तेषां पटलानि समूहाः पतन्ति आगच्छन्ति । यस्यां च स्वच्छासु निर्मलासु विविधमणिभिरनेकरत्नैर्निर्मिता रचिता दासभवनस्य निवासगृहस्य या भव्यभित्तयः सुरम्यकुड्यानि तासु स्वां छायां निजप्रतिबिम्बम् अवलोकयन्त्यो वीक्षमाणाः कृतापरस्त्रीशङ्का कृता विहिता अपरस्त्रीणाम् इतरनारीणां शङ्का सन्देहो याभिस्ताः प्रियतमाः स्निग्धतमा भार्याः कथमपि महता काठिन्येन प्रत्यानीयन्ते प्रसाद्यन्ते । अत्रेन्द्रनीलांशुजालादिषु शाद्वलाङ्कुरादि भ्रान्तिवर्णनाद् भ्रान्तिमानलङ्कारः । भवनानां विविधमणिरत्नादिनिर्मितत्ववर्णनादुदात्तालंकारश्च । तयोः संकरः ।

यस्यां च दिव्यदेवकुलालंकृताः स्वर्गा इव मार्गाः, सततमपांसुवसनाः सागरा इव नागराः, समत्तवारणानि वनानीव भवनानि, सुरसेनान्विताः स्वर्गभूपा इव कूपाः, अधिकंधरोद्देशमुद्भासयन्तो हारा इव विहाराः ।

और जिसमें सड़कें गगनचुम्बी देवभवनों से अलंकृत हैं, जैसे स्वर्ग दिव्य देवकुलों से अलंकृत होते हैं। नागरिक निरन्तर अधूलिधूसरित वस्त्र धारण करने वाले हैं, जैसे सागर जलों को सम्यक् प्रकार धारण करने वाले होते हैं। भवन बरामडों से युक्त हैं, जैसे वन मस्त हाथियों से युक्त होते हैं। कुएं सु-रस (उत्तम जल) से समन्वित हैं, जैसे स्वर्ग के राजा सुर-सेना से समन्वित होते हैं। बिहार (बौद्धमठ) अत्यधिक धरा प्रदेश को उद्भाषित करते हैं, जैसे हार ग्रीवाप्रदेश को उद्भाषित करते हैं।

यस्यां च दिव्यदेवकुलालंकृताः दिव्या दिवि भवा ये देवा सुरास्तेषां कुलैः समूहैर्वंशैर्वा अलङ्कृताः शोभिताः स्वर्गा इव सुरालया इव, दिव्यदेवकुलालंकृताः दिव्या सुरम्यैः देवकुलैर्देवगृहैरलंकृता मार्गाः पन्थानः सन्ति। सततं निरन्तरम् अपां सुवसनाः जलानां शोभनाधाराः सागरा इव समुद्रा इव, अपांसुवसनाः अपांसूनि अमलिनानि वसनानि वासांसि येषां ते नागरा नगरवासिनः सन्ति। समत्तवारणानि मत्तैर्मदोन्मत्तैः वारणैर्गजैः सहितानि वनानि इव काननानि इव समत्तवारणानि मत्तवारणेन वरण्डकेन 'वराण्डा इति प्रसिद्धेनगृहभागेन' सहितानि भवनानि गृहाणि सन्ति। सुरसेनान्विताः सुरसेनया देवसैन्येन अन्विता युक्ताः स्वर्गभूपा इव स्वर्नृपा इव सुरसेन अन्विताः शोभनसलिलेन युक्ताः कूपा उदपानाः सन्ति। अधि-कंधरोद्देशम् अधिग्रीवाप्रदेशम् उद्भासयन्तः शोभयन्तो हारा इव स्रज इव, अधिकं धरोद्देशम् उद्भासयन्तः अतिशयेन भूप्रदेशम् शोभयन्तो विहारा बोद्धाश्रमा सन्ति। अत्र श्लेषानुप्राणितोपमालंकारः।

यस्यां च बहुलक्षणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादाः बहिश्च वारणेन्द्राः, सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला बहिश्च क्रीडाकमलदीर्घिकाः, बहुधान्यनिरुद्धाः कथमप्यभिगम्यन्तेऽन्तः पण्यस्त्रियो बहिश्च क्षेत्रभूमयः, नानाशुकविभूषणाः शोभन्तेऽन्तः सभा बहिश्च सहकारवनराजयः, ससौगन्धिकप्रसारा विराजन्तेऽन्तर्विपणयो बहिश्च सलिलाशयाः।

और जिसमें अन्दर बहुत-सी मंजिलों वाले, सफेदी किये हुए प्रासाद दिखाई देते हैं, तथा बाहर अनेक लक्षणों वाले, तेज दौड़ते हुए हाथी। अन्दर सुशोभित रंगस्थल वाली संगीतशालाएं दिखाई देती हैं, तथा बाहर सुशोभन तरंगों वाली कमलयुक्त क्रीडा-वापियाँ। अन्दर बहुधा अन्यों से रुद्ध वारांगनाओं को प्राप्त करना दुष्कर है, तथा बाहर प्रचुर धान्य से भरी हुई क्षेत्र-भूमियों पर चलना। अन्दर अनेक आशु कवियों से भूषित सभाएं शोभित हैं, तथा बाहर अनेक तोतों से भूषित आम्रवन पंक्तियाँ। अन्दर सुगन्धद्रव्यविक्रेताओं द्वारा विक्रय के लिये फैलाई हुई वस्तुओं से युक्त बाजार शोभा पाते हैं, तथा बाहर कल्हार पुष्पों के प्रसार से युक्त जलाशय।

यस्यां च अन्तः अभ्यन्तरे बहुलक्षणाः बहुला, बहवः क्षणा भूमिका येषु ते सुधा-वन्तः श्वेतलेपवन्तः प्रचुराः प्रासादाः बहूनि राजभवनानि बहिश्च बाह्य प्रदेशे च बहु-लक्षणा बहूनि लक्षणानि प्रशस्तचिह्नानि येषां तादृशाः सु-धावन्तः सुष्ठु गच्छन्तः प्रचुरा वारणेन्द्रा अनेके गजा दृश्यन्ते समवलोक्यन्ते । अन्तः सुशोभित-रङ्गा सुशोभितः सुसज्जितो रङ्गोऽभिनय स्थानं यासु ताः संगीतशालाः संगीतभवनानि, बहिश्च सुशोभि-तरङ्गाः सुशोभिनस्तरङ्गा वीचयो यत्र ताः क्रीडाकमलदीर्घिकाः क्रीडाकमलानां लीलारविन्दानां दीर्घिकाः वाप्यः सन्ति। अन्तः बहुधा-अन्य-निरुद्धाः बहुप्रकारेण परपुरुषः क्रीताः पण्यस्त्रियो वारवनिताः कथमपि महता काठिन्येन अभिगम्यन्ते प्राप्यन्ते, बहिश्च बहु-धान्य-निरुद्धा बहुभिः प्रचुरैर्धान्यैः सस्यैर्निरुद्धाः संबाधाः क्षेत्रभूमयः क्षेत्रभागाः । अन्तः नाना-आशुकविभूषणाः नाना अनेके आशुकवयः सत्वरकविताकारिणः भूषणमलङ्कारो यासां ता सभाः संसदः शोभन्ते राजन्ते, बहिश्च नाना-शुक-विभूषणाः नाना शुकाः कीरा विभूषणं यासां ताः सहकारवन-राजयः आम्रोद्यानपंक्तय । अन्तः ससौगन्धिकप्रसाराः सौगन्धिकानां वणिजां प्रसारैर्विक्रेयवस्तुभिः सहिताः विपणयः पण्यवीथिका विराजन्ते शोभन्ते, बहिश्च स सौगन्धिक-प्रसाराः सौगन्धिकानां कल्हारपुष्पाणां प्रसारेण विस्तरेण सहिताः सलिलाशयाः जलाशयाः । अत्रनगरीवर्णने प्रसादवारणेन्द्रदीनामुभयेषामपि प्रस्तुतत्वात् तेषां च बहूलक्षणात्वादिकधर्मसम्बन्धात् सर्वत्र श्लेषानुप्राणिता तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। किं बहुना।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः ।
कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रवयसां मुदम् ॥३१॥

बहुत क्या, उस नगरी में अन्दर अनेक सुन्दरियों से शोभित भूमियाँ रम्य आयु वाले युवकों को आनन्द देती हैं तथा बाहर अनेक उद्यानों से शोभित भूमियाँ चित्र-विचित्र पक्षियों को आनन्दित करती हैं ।

किं बहुना किमधिकेन । यत्र यस्यां निषधायां भूमयो भूप्रदेशाः बहिः बाह्यप्रदेशेषु नाना-आरामोपशोभिताः नानाऽऽरामैर्बहुभिरुद्यानैः उपशोभिता अलंकृताः सर्वदा सदैव विचित्रवयसां बहुवर्णानां पक्षिणाम् अन्तश्च अभ्यन्तर च नाना-रामोपशोभिताः नानारामाभिरनेकरमणीभिरलंकृताः सर्वदा विचित्र-

वयसां रम्यायुषां तरुणाना मुदमानन्दं कुर्वन्ति विदधति। अत्रापि नगरीवर्णने बहिरन्तर्भूम्योरुभयोरपि प्रस्तुतत्वं, तयोश्च नानारामोपशोभितत्वरूपैकधर्म-सम्बन्धवर्णनाच्छ्लेषानुप्राणिता तुल्ययोगिताऽलंकारः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

यस्यां च भक्तभाजो देवतायतनेषु देवताः संनिधाना दृश्यन्ते हट्टेषु वणिग्जनाः, अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कवयो विलोक्यन्ते द्यूतस्थानेषु, द्यूतकाराः, कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संचरन्ति वेश्याङ्गणेषु भुजङ्गाः।

और जहाँ देवमन्दिरों में उक्त-सेवी देवता संनिहित दृष्टिगोचर होते हैं, तथा बाजारों में अन्न-सेवी वणिग्जन। कविगोष्ठियों में एक-एक अक्षर के प्रति सावधान कवि दृष्टिगत होते हैं, तथा द्यूतालयों में द्यूत रस में ध्यान लगाये जुआरी। राजद्वारों में वन-वृक्षों के प्रेमी हाथी विचरण करते हैं, तथा वारागनाओं के आँगनों में कान्तानुराग-प्रेमी कामुक पुरुष।

यस्यां च देवतायतनेषु देवमन्दिरेषु भक्तभाजः भक्तान् भक्तिमतो जनान् भजन्ते स्वशरणे गृह्णन्तीति ता देवताः सुराः सनिधानाः संनिहिता दृश्यन्ते वीक्ष्यन्ते, हट्टेषु विपणिषु च भक्तभाजोऽन्नभाजो वणिग्जना व्यापारिणः। कविगोष्ठीषु कविसभासु अक्षरसावधानाः अक्षरेषु वर्णेषु सावधाना दत्तध्यानाः कवयः काव्यकर्त्तारो विलोक्यन्ते, द्यूतस्थानेषु द्यूतालयेषु च अक्षरसावधानाः अक्षरसे द्यूतक्रीडायाम् अवधानं ध्यानं येषाः तथाविधाः द्यूतकारा अक्षक्रीडकाः। राजद्वारेषु नृपप्रतीहारेषु कान्तार-अग-प्रियाः कान्तारे वने अगाः सल्लक्यादयो वृक्षाः प्रियाः इष्टा येषां ते करिणो हस्तिनः संचरन्ति विहरन्ति, वेश्याङ्गणेषु वारांगनाजिरेषु च कान्ता-राग-प्रियाः कान्तानां रमणीनां रागोऽनुरागः प्रियो येषां ते भुजङ्गाः कामुका जनाः। अत्रापि श्लेषानुप्राणिता तुल्ययोगिताऽलङ्कारः।

यस्यां च चतुरुदधिवेलाविराजितसकलधराचक्रचूडामणौ, मणिकर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया सुरपतिपुरीपराभवकारिण्याम् अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्माद्यत्करिकपोलमण्डलेषु न त्यागिगृहेषु, भोगिभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु स्नेहक्षयो रजनिविरामविरमत्प्रदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु, कूटप्रयोगो गीततानविशे-

षेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु ।

वह नगरी चारों समुद्रों के तटों से शोभित सकल भूमण्डल की चूडामणि है। सुरम्य प्रासादों के मणि-कर्मनिर्मित होने के कारण वह इन्द्रपुरी अमरावती को भी पराभूत करती है। वहाँ व्याकरण के उपसर्गों में अव्यय-भाव (अव्यय नाम) होता है, धनियों के धनों में अव्यय-भाव (व्यय न किया जाना) नहीं होता। उन्मत्त होते हुए हाथियों से गण्डस्थलों पर मदजल की विच्छित्ति (शोभा) होती है, त्यागियों के घरों में त्याग की विच्छित्ति (विच्छिन्नता) नहीं होती। सर्पों में भोग-भंग (फन का कुचला जाना) होता है, विलासी जनों में भोग-भंग (भोगों का भंग) नहीं होता। रात्रि की समाप्ति पर बुझते हुए प्रदीप-पात्रों में स्नेह-क्षय (तेल का क्षय) होता है, विश्वस्त जनों के हृदयों में स्नेह-क्षय (प्रेम का क्षय) नहीं होता। गीतों की विशेष-विशेष तानों में कूट (तान विशेष) का प्रयोग होता है, व्यवहारों में कूट (छल) का प्रयोग नहीं होता। व्याकरण का अध्ययन करने वाले छात्रों में वृत्ति (सूत्रार्थ) के विषय में विवाद होता है, स्वामी तथा भृत्यों में वृत्ति (वेतन) के विषय में झगड़ा नहीं होता। चित्रों में स्थानक-भेद (स्थिति-भेद 'पोज' का भेद) होता है, सत्पुरुषों में स्थानक-भेद (रक्षणीय नगरादि स्थानों का भेदन) नहीं होता।

यस्यां च चतुरुदधीनां चतुःसागराणां वेलाभिः कूलैर्विराजितं शोभितं यत् सकलधराचक्रं समस्तभूमण्डलं तस्य चूडामणौ शेखरीभूतायां, मणिकर्मभिः रत्नक्रियाभिः निर्मितहर्म्यतया रचितप्रासादत्वात् सुरपतिपुर्या इन्द्रनगर्याः पराभवकारिण्यां तिरस्कारविधायिन्याम् अव्ययभावः 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' इत्यादिलक्षितमव्ययत्वं व्याकरणोपसर्गेषु व्याकरणस्य व्याकरणशास्त्रस्य उपसर्गेषु प्रादिषु वर्तते, धनिनां धनेषु वित्तपतीनां वित्तेषु अव्ययभावो न व्ययराहित्यं नास्ति । दानविच्छित्तिर्मदजलशोभा उन्माद्यन्ते उन्मत्तीभवन्तो ये करिणो गजास्तेषां कपोलमण्डलेषु गण्डस्थलेषु विद्यते, त्यागिगृहेषु त्यागिनां दानशीलानां गृहेषु सदनेषु दानविच्छित्तिर्न त्यागविच्छेदो नास्ति भोगभङ्गः फणामर्दनं भुजङ्गेषु सर्पेषु विद्यते, विलासिलोकेषु भोगिजनेषु भोगभङ्गो न विलासविरतिर्न । स्नेहक्षयस्तैलसमाप्तिः रजनिविरामे निशासमाप्तौ विरमन्ति निर्वाणं प्राप्नुवन्ति

यानि प्रदीपपात्राणि दीपकभाजनानि तेषु विद्यते, प्रतिपन्नजनहृदयेषु विश्वस्त-जनचित्तेषु स्नेहक्षयो न प्रीतिविनाशो न। कूटप्रयोगः कूटनामकतानविशेषस्य प्रयुक्तिः गीततानविशेषेषु गीतानां संगीतानां तानविशेषेषु लयविशेषेषु विद्यते; व्यवहारेष्वाचरणेषु कूटप्रयोगो न छद्मप्रयुक्तिर्न । वृत्तिकलहः सूत्रार्थविषये विवादो वैयाकरणच्छात्रेषु वैयाकरणा व्याकरणाध्येतारो ये छात्राः शिष्यास्तेषु विद्यते, स्वामिभृत्येषु स्वामिनः प्रभवो भृत्याः सेवकाश्च तेषु वृत्तिकलहो न वेतनादिविषये विवादो न। स्थानकभेदः स्थितिभेदः चित्रकेषु चित्रेषु विद्यते, सत्पुरुषेषु सज्जनेषु स्थानकभेदो न रक्षणीयनगरादेर्भेदनं न। अत्र नगर्यां चूडाम-णित्वारोपाद् रूपकम्, परतश्च श्लिष्टः शाब्दः परिसंख्यालङ्कारः।

किं बहुना ।

त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्धया भान्ति यस्यां
सुरसदनशिखाग्रेष्वाग्रहग्रन्थिनद्धाः ।
नभसि पवनवेल्लपल्लवैरुल्लसद्भिः
परममिह वहन्त्यो वैभव वैजयन्त्यः ॥३२॥

बहुत क्या, उस निषधापुरी में देवगृहों के शिखराओं पर बाँस की ग्रन्थियों में बधी हुई पताकाए, मानो स्वर्ग-नगर की समृद्धि से स्पर्धा के कारण, आकाश के लहराते हुए, वायु से चंचल वस्त्रप्रान्तों से परम वैभव को धारण करती हुई शोभा पाती हैं।

किं बहुना किमधिकेन । यस्यां निषधायां त्रिदिवपुरस्य स्वर्गनगरस्य समृद्ध्या ऐश्वर्येण या स्पर्धा ईर्ष्या तया सुरसदनशिखाग्रेषु प्रासादशिखरान्तेषु आग्रहग्रन्थिनद्धाः आग्रहा वेणवस्तेषां ग्रन्थिभिरग्रपर्वभिर्नद्धा बद्धाः, नभसि गगने उल्लसद्भिः शोभमानैः पवनवेल्लत्पल्लवैः पवनेन वायुना वेल्लद्भिश्चलद्भिः पल्लवैर्वस्त्राञ्चलैः परमम् उत्कृष्टं वैभवम् ऐश्वर्यं वहन्त्यो धारयन्त्यो वैजयन्त्यः पताका भान्ति शोभन्ते । अत्र वैजयन्तीनामचेतनत्वात् स्पर्धाया अभावेऽपि तथा वर्णनात् प्रतीयमानोत्प्रेक्षाऽलंङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ।

अपि च ।

चार्वी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता ।
नगरी न गरीयस्या संपदा सा विवर्जिता ॥३३॥

और, सदा सदाचार परायण सज्जनों से सेवित वह रमणीक नग विपुल संपत्ति से रहित नहीं है ।

अपि च किं च, चार्वी रम्या, सदा सर्वदा सदाचारे शुभाचरणे सज्जा त्परा ये सज्जनास्तैः सेविता समाश्रिता सा नगरी असौ निषधाख्या पुरी यस्या संपदा महीयसा ऐश्वर्येण विवर्जिता न रहिता नास्ति । अत्र 'सदा-सदा' 'सज्ज-सज्ज', 'नगरी-नगरी', इति परस्परनिरपेक्षतया स्थितानां त्रयाणां कानां संसृष्टिः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

नलनृपतिवर्णनम्

तस्यामासीन्निजभुजयुगलबलविदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्रनी लोत्पलगलद्बहुलबाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधिवेला ननिखातकीर्तिस्तम्भभूषितभुवनवलयः, विश्वंभराभोग इव बहुधारणक्ष प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः, दनुजलोक इव सदान स्त्रीजनस्य, वसिष्ठ इव विश्वामित्रत्रासजननः, जनमेजय इव परीक्षितन परशुराम इव परशुभासितः, राघव इवालघुकोदण्डभङ्गरञ्जितजन सुमेरुरिव जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथीसहितः, चिन्ताम प्रणयिनाम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम् उपाध्यायोऽध्ययनविदाम्, आ दर्शनानाम्, आचार्यः, शौर्यशालिनाम्, उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परि दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्यकारिणाम्, अपश्चिमो विपश्चिताम्, अप श्चात्यस्त्यागवताम् अचरमश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभागधारस्त भूतभुजकाण्डकीलितशालभञ्जिकायमानविजयश्रीः, श्रीवीरसेनसूनुः, सम स्तजगत्प्रासादशिरःशेखरीभूतकान्तिकीर्तिध्वजो राजा राज्यलक्ष्मीकरेणु चापलसंयमनशृङ्खलः, खलवृन्दकन्दलदावानलो नलो नाम ।

उस नगरी में नल नाम का राजा था । उसने अपने भुजयुगल के ब से समस्त शत्रुओं का संहार कर दिया था । शत्रु सुन्दरियों के नेत्र रूपी नील कमलों से निकलते हुए प्रचुर अश्रुप्रवाह में उसका प्रताप रूपी राजहंस तैरत था । समस्त समुद्रतटों के वनों में गाड़े हुए कीर्ति-स्तम्भों से उसने भूमण्ड को अलंकृत किया था । वह अनेक प्रकार से रण में समर्थ था, जैसे भूमि क विस्तार बहुतों को धारण करने में समर्थ है । वह नव-सुधा-हारी (किसी क

भूमि न छीनने वाला) था, जैसे राजमहल नव-सुधा-हारी (नवीन चूने की पुताई से मनोहर) होता है। वह अनेक प्रकार से लक्ष्मी (मा) का आश्रय था, जैसे सूर्य अनेक तेजों का आश्रय होता है। वह स्त्रीजनों के लिए सदा नवीन था, जैसे दैत्यलोक दानवों सहित होता है। वह समस्त शत्रुओं में त्रास उत्पन्न करने वाला था, जैसे वशिष्ठ ने विश्वामित्र मुनि में त्रास उत्पन्न किया था। उसने नीति को परीक्षित किया हुआ था, जैसे जनमेजय परीक्षित का पुत्र था[1]। वह परम शुभ में आसीन था, जैसे परशुराम परशु से भासित था। वह महान् (अलघुकः) था, तथा दण्ड क्षमा करके प्रजाओं को अनुरञ्जित करता था। जैसे राम ने विशाल धनुष का भंग करके राजा जनक को अनुरञ्जित किया था। वह रूप सम्पत्ति से युक्त था, जैसे सुमेरु पर्वत स्वर्ण-सम्पत्ति से युक्त है। वह पुण्यभागी, रथ-स्वामी तथा परोपकारी था, जैसे हिमालय पुण्य भागीरथी से युक्त है। वह प्रणयी जनों का चिन्तामणि था, योद्धाओं का अग्रणी था, अध्ययन-वेत्ताओं का उपाध्याय था, दर्शनों का दर्पण था, शूरों का आचार्य था, धनुर्वेद का उपदेशक था, दृढ़-प्रहारियों में समर्थ था, पुण्य-कर्त्ताओं में अग्रगण्य था; विद्वानों में प्रथम था, त्यागियों में सबसे आगे था, चातुर्य के आचार्यों में सबसे पहला था। अपरिमित भू-भार के आधारस्तम्भवत उसके भुजदण्डों पर कील से जड़ी हुई पुतली के समान विजयश्री सदा उसके साथ रहती थी। वह श्री वीरसेन का पुत्र था। उसकी रम्य कीर्तिध्वजा समस्त जगत् रूपी प्रासाद का शिरःशेखर थी। राज्यलक्ष्मी रूपी हथिनी की चंचलता को रोकने के लिए वह

---

१. विश्वामित्र जब राजा थे तब एक बार शिकार के प्रसंग से वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वसिष्ठ ने कामधेनु के प्रभाव से विश्वामित्र का बहुत आतिथ्य किया। विश्वामित्र ने यह जान कि सारा चमत्कार कामधेनु का है वसिष्ठ से उस धेनु की याचना की। वसिष्ठ के स्वीकार न करने पर वह उसे बलपूर्वक ले जाने लगे, किन्तु धेनु के प्रताप से परास्त हुये। तब विश्वामित्र ने तपस्या से शिव को प्रसन्न कर दिव्य अस्त्र प्राप्त किये और वसिष्ठ को पराजित करना चाहा। परन्तु वसिष्ठ ने अपने ब्रह्मदण्ड से सबको विफल कर दिया एवं विश्वामित्र के मन में त्रास उत्पन्न किया।

(रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५५, ५६)।

शृङ्खला का काम करता था। दुर्जनवृन्द रूपी नवांकुरों के लिए वह दावा
था।

तस्यां निषधापुर्याम् आसीदवत्तंत निजभुजयुगलस्य स्वकीयबाहुद्वयस्य बले
पराक्रमेण विदलितानि विदारितानि सकलानि समस्तानि यानि वैरिवृन्दा
शत्रुसमूहास्तेषां याः सुन्दर्यो रमण्यस्तासां नेत्रनीलोत्पलेभ्यो लोचनकुवलये
गलति स्रवति बहलवाष्पपूरे प्रचुराश्रुसमूहे प्लवमानः संतरन् प्रतापः प्रभाव ए
राजहंसो यस्य सः [परम्परितरूपकालंकारः]; सकलजलनिधिनामखिलसमुद्रा
वेलावनेषु तटारण्येषु निखाताः स्थापिताः ये कीर्तिस्तम्भा यशः स्थूणास्तैर्भू
मलंकृतं भुवनकुवलयं भूमण्डलं येन सः, [भुवनवलयेत्यत्र भुवनमेव वलय
रूपकम्, भुवनं वलयमिवेत्युपमा, साधकबाधकाभावात् तयोः सन्देहसंक
विश्वम्भराभोग इव पृथिव्या विस्तार इव बहुधारणक्षमः बहुधाऽनेकशो रणे
क्षमः समर्थः, पक्षे—वहूनाम् अनेकवस्तूनां धारणे वहने क्षमः, प्रासाद इव रा
गृहमिव न वसुधाहारी वसुधां कस्यापि भूमिं हरति आच्छिनत्तीति तादृशो
पक्षे—नव-सुधा-हारी नवया नूतनया सुधया श्वेतलेपेन हारी रम्यः, रवि
सूर्य इव अनेकधामा-आश्रयः अनेकधा वहुधा आश्रयो माया लक्ष्म्या आश्र
पक्षे—अनेक-धाम-आश्रयः अनेकस्य प्रचुरस्य धाम्नस्तेजस आश्रयः, दनुजलो
इव दैत्यवर्ग इव स्त्रीजनस्य रमणीलोकस्य सदा नवः नित्यं नूतनः, पक्षे—
दानवो दानव सहितः, वसिष्ठ इव मैत्रावरुणिरिव विश्व-अमित्रत्रासजन
विश्वेषां सर्वेषाम् अमित्राणां वैरिणां त्रासजननो भयजनकः, पक्षे—विश्वामित्र
मुनेस्त्रासजनकः, जनमेजय इव तन्नामा नृपतिरिव परीक्षित-नयः परीक्षि
समीक्षितो नयो नीतिर्येन सः, पक्षे—परीक्षित-तनयः परीक्षेस्तनयः सूतः परशुर
इव भार्गव इव परशुभ—आसितः परस्मिन्नुत्कृष्टे शुभे आसित स्थितः, पक्षे
परशु—भासितः परशुना कुठारेण भासितः शोभितः; राघव इव अलघुको द
भङ्गरञ्जितजनकः अलघुकोऽक्षुद्रो दण्डभङ्गेन दण्डमुक्त्या रञ्जिता आनन्दि
जना येन तादृशश्च, पक्षे—अलघु-कोदण्ड० अलघोर्विशालस्य कोदण्डस्य धनु
भङ्गेन त्रोटनेन रञ्जितं आनन्दितो जनको मैथिलेयो येन सः; सुमेरुरिव सुमे
पर्वत इव जात-रूपसम्पत्तिः जाता उत्पन्ना रूपसम्पत्तिः सौन्दर्यसम्पत् यस्य स
पक्षे—जातरूपं सुवर्णमेव सम्पत्तिरैश्वर्यं यस्य सः; तुहिनाचल इव हिमालय

पुण्यभागीरथीसहितः पुण्यभागी पुण्यभजनशीलो, रथी रथवान्, सहितो हितैः, सहितश्च, पक्षे—पुण्यभागीरथीसहितः पुण्यया पावन्या भागीरथ्या गङ्गया सहितः। [अत्र विश्वम्भरेत्यारभ्य श्लेषानुप्राणितोपमालंकारः] प्रणयिनाम् अर्थिनां चिन्तामणिर्मनोवाञ्छितफलप्रदः सांग्रामिकाणां योद्धॄणाम् अग्रणीरग्रेसरः, अध्ययनविदामध्येतॄणाम् उपाध्यायः शिक्षकः, दर्शनानां दर्शनशास्त्राणाम् आदर्शो दर्पणः, शौर्यशालिनां शूराणाम् आचार्यो गुरुः, शस्त्रशास्त्रस्य धनुर्वेदस्य उपदेशक उपदेष्टा, दृढप्रहारिणां दृढं प्रहर्तुं शीलं येषां ते दृढप्रहारिणस्तेषां परिवृढः प्रभुः ['प्रभौ परिवृढः' इति परिपूर्वाद् वृह् धातोर्निपात्यते] पुण्यकारिणां सुकृतिनाम् अग्रगण्यो मुख्यः, विपश्चितां विदुषाम् अपश्चिमोऽचरमः—प्रमथ इत्यर्थः, त्यागवतां दानिनाम् अपाश्चात्यः पूर्वः चातुर्याचार्याणां परमचतुराणाम् अचरमोऽनन्तिमः, [चिन्तामणिरित्यारभ्य रूपकानुप्राणितोल्लेखः], अपर्यन्तोऽसीमो यो भूभारो धरित्रीभरस्तस्य आधारस्तम्भभूतम् आश्रयस्थूणारूपं यद् भुजकाण्डं बाहुदण्डं तत्र कीलिता खचिता शालभञ्जिका पुत्तलिका इव आचरन्ती विजयश्रीर्जयलक्ष्मीर्यस्य तादृश्यः [अत्र क्यङुपमा], श्रीवीरसेनसूनुः श्रीवीरसेननृपतेः पुत्रः समस्तं समग्रं जगल्लोक एव प्रासादो राजभवनं तत्र शिरःशेखरीभूतः शिरोभूषणायमानः कान्तो रम्यः कीर्तिध्वजो यशो वैजयन्ती यस्य सः [रूपकम्], राज्यलक्ष्मीः आधिपत्यश्रीरेव करेणुका गजवशा तस्याश्चापलसंयमने चाञ्चल्यनियन्त्रणे शृङ्खलः निगड खलवृन्दकन्दलानां दुष्टजनाङ्कुराणां दावानलो वनाग्निर्गलो नाम नलाभिधानो राजा नृपः, [समस्तेत्यारभ्य परम्परितरूपकम् ।]

यस्येन्दुकुन्दकुमुदकान्तयः सुकललोककर्णप्रियातिथयो गुणाः सततमेकब्रह्माण्डसंपुटसंकीर्णनिवासव्यसनविषादिनः पुनरनेकब्रह्माण्डकोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्णलग्नाः स्वर्गलोकमधिवसन्ति स्म ।

उसके चन्द्रमा, कुन्द पुष्प तथा कुमुद जैसी (धवल) कान्ति वाले, सब लोगों के कानों के प्रिय अतिथिभूत गुण निरन्तर एक ब्रह्माण्ड रूपी छोटे से सन्दूक में संकीर्ण निवास की विपत्ति से दुःखी होकर मानो अनेकों करोड़ ब्रह्माण्डों की रचना की प्रार्थना करते हुए भगवान् विश्वस्रष्टा कमलयोनि (ब्रह्मा) के कर्णलग्न होकर स्वर्गलोक में रहते थे ।

यस्य राज्ञो नलस्य इन्दुश्चन्द्रः कुन्दो माध्यकुसुमं कुमुदं कैरवं च तद्वत् कान्तिरौज्ज्वल्यं येषां ते, सकललोककर्णानां समस्तजनश्रोत्राणां प्रियातिथयः स्निग्धप्राघुणिका गुणाः शौर्यदाक्षिण्यादयः सततं निरन्तरम् एकस्मिन् ब्रह्माण्डसम्पुटे भूमण्डलपिटके संकीर्णः संकुलो निवासः स्थितिरेव व्यसनं विपत् तेन विषादिनो निर्विष्णाः, पुनर्भूयोऽपि अनेकब्रह्माण्डकोटीनां बहुजगत्कोटिसंख्यानां घटनां रचनाम् अभ्यर्थमाना इव प्रार्थयमाना इव भगवतः श्रीमतो विश्वस्रष्टो जगत्स्रष्टुः कमलसंभवस्य नलिनयोनेर्ब्रह्मणः कर्णलग्नाः श्रोत्रसंसक्ताः स्वर्गलोकं सुरालयम् अधिवसन्ति स्म आश्रयन्ति स्म। इन्दुकुमुदकान्त्य इत्युपमा गुणानामचेतनत्वाद् विषादासम्बन्धेऽपि तद्वर्णनादसम्बन्धे सम्बन्धारूपातिशयोक्तिः। अभ्यर्थयमाना इवेति हेतूत्प्रेक्षा।

यस्मिंश्च राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः नृत्येषु विषमकरणप्रयोगाः, वाद्येषुदण्डकरप्रहाराः, पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिद्यूतेषु पाशप्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोधेषु पादकल्पनाः, कञ्चुकमण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि आसन्, न प्रजासु।

सब लोगों को आनन्द देने वाले उस राजा के भूमि को आह्लादित करते होने पर गीतों में जातिसंकर (गीतों के जातियों के मिश्रण) पाये जाते थे, प्रजाओं में जातिसंकर (वर्णसंकर) नहीं; तालों में लय-भंग (स्वरों के उतार-चढ़ाव) होते थे, प्रजाओं में आलय भंग (सेंध लगाना आदि) नहीं; नृत्यों में विषम कारणों (कर-चरणादि अङ्गों अथवा नृत्यशास्त्र में प्रसिद्ध तल, पुष्प, पट आदि १०८ करणों) के प्रयोग होते थे, प्रजाओं के विषम रणों (युद्धों के प्रयोग नहीं; वाजों में दण्ड तथा हाथों के प्रहार होते थे, प्रजाओं में वधादि दण्ड तथा कर (टैक्स) द्वारा पीडन या डण्डे से हाथों पर प्रहार (बेंत मारना) नहीं; पुण्य कर्मों के प्रारम्भ करने में सातत्य (प्रबन्धाः) होते थे, प्रजाओं का कड़े बन्धन में डाला जाना (प्रबन्ध) नहीं था; द्यूतक्रीडा में पांसों का प्रयोग होता था, प्रजाओं में फांसी का प्रयोग नहीं था; पुष्पित केतकियों का शाखाछेद होता था, प्रजाओं के हाथ नहीं काटे जाते थे; वटवृक्षों की जड़ें निकलती थीं; प्रजाओं के पैर नहीं काटे जाते थे; कुर्तों की शोभा के लिये नेत्र नामक

रेशमी वस्त्र विविध प्रकार से काटे जाते थे (या कुर्तों की शोभा के लिए उनमें नेत्राकार छिद्र अर्थात् काज काटे जाते थे), प्रजाओं के नेत्र नहीं फोड़े जाते थे।

यस्मिंश्च जनितजनानन्दे उत्पादितलोकहर्षे राजनि नृपे नले मेदिनीं धरित्रीं नन्दयत्याह्लादयति सति, गीतेषु संगीतेषु जातिसंकरा जातीनामष्टादशानां संकरा मिश्रप्रतीतय आसन्, प्रजासु जनेषु जातिसंकरा वर्णसंकरा न। तालेषु तालवादनेषु नानालयभङ्गाः नाना लयानां द्रुतमध्यविलम्बितलक्षणानामनेकलयानां भङ्गास्तरङ्गाः ('भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः इत्यमरः) आसन् प्रजासु नानाऽऽलयानामनेकगृहाणां भङ्गाश्चौरादिभिः क्रियमाणाः सन्धिच्छेदा न। नृत्येषु नर्तनेषु विषम-करण-प्रयोगाः विषमाणां वक्रीकृतानां करणानां करचरणाद्यङ्गानां यद्वा नृत्यशास्त्रे प्रसिद्धानामष्टोत्तरशतसंख्यानां तलपुष्पपटादीनां प्रयोगाः प्रयुक्तय आसन्, प्रजासु विषमकरण-प्रयोगाः विषमकराणां विकटानां नीतिविरुद्धानां वा रणानां युद्धानां प्रयोगा न। वाद्येषु डिण्डिमादिषु दण्डकरप्रहाराः दण्डैः कोणैः करैः पाणिभिश्च प्रहारास्ताडनान्यासन् प्रजासु दण्डा वधादयः करा राजदेयांशास्तैः प्रहाराः पीडनानि यद्वा, दण्डेन लगुडेन करेषु हस्तेषु प्रहारास्ताडनानि न। पुण्यकर्मारम्भेषु पुण्यकार्याणाम् कर्मणा शुभ आरम्भेषु प्रारम्भेषु प्रबन्धाः सातत्यान्यासन, प्रजासु प्रबन्धाः प्रकृष्टबन्धनानि न। सारिद्यूतेषु अक्षक्रीडासु पाशप्रयोगाः पाशकप्रयुक्तय आसन, प्रजासु पाशप्रयोगा अथाथ गले रज्जुबन्धनव्यापारा न। पुष्पितांकेतकीषु कुसुमितकेतकीलतासु हस्तच्छेदाः शाखाकर्तनान्यासन् प्रजासु हस्तच्छेदाः पाणिकर्तनानि न। न्यग्रोधेषु वटतरुषु पादकल्पनाः पादानां मूलानां कल्पना रचना आसन्, प्रजासु पादकल्पनाश्चरणकर्तनानि न। कञ्चुकमण्डनेषु कञ्चुकभूषासु नेत्रविकर्तनानि नेत्राणां क्षौमवस्त्रविशेषाणां ('स्वाच्छटांशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमरः) विकर्तनानि शरीरप्रमाणानुसारं विच्छेदनानि तेषु लोचनाकारच्छिद्ररचनानि वा आसन्, प्रजासु नेत्रविकर्तनानि लोचनभङ्गा न। श्लेषानुप्राणितः शाब्दः परिसंख्यालङ्कारः

यश्च कोऽप्यन्यादृश एव लोकपालः। तथा हि, अपूर्वो विबुधपतिः, अदण्डकरो धर्मराजः, अजघन्यः प्रचेताः, अनुत्तरो धनदः।

वह कोई भिन्न प्रकार का ही लोकपाल था। उदाहरणार्थ, पूर्व दिशा में नहीं रहता था, पर देवराज था (वस्तुतः—अपूर्व विद्वत्पति था)। दण्डपाणि न होते हुए भी यम था (वस्तुतः—प्रजा को वधादि दण्ड तथा किसी अन्य राजा को कर न देने वाला था और धार्मिक था)। पश्चिम दिशा में नहीं रहता था, पर वरुण था (वस्तुतः—अकुत्सित तथा प्रकृष्ट चित्त वाला था)। उत्तर दिशा का वासी नहीं था पर कुबेर था (वस्तुतः—अद्वितीय धनदाता था)।

यश्च राजा नलः कोऽप्यन्यादृश एव कश्चन विलक्षण एव लोकपालो जगत्पालकः, पक्षे प्रजापालकः। तथा हि, अपूर्वो विबुधपतिः पूर्वस्यां दिशि न स्थितोऽपि विबुधानां देवानां पतिरिन्द्र इति विलक्षणत्वम् इन्द्रस्य पूर्वदिग्वर्तित्वात्, पक्षे—अपूर्वोऽद्भुतो विबुधानां विदुषां पतिः। अदण्डकरो धर्मराज न विद्यते दण्डो यष्टिः करे यस्य तादृशोऽपि धर्मराजो यमराज इति विलक्षणत्वं यमस्य दण्डपाणित्वाद्, ('धर्मराजो जिनयमौ' इत्यमरः) पक्षे न विद्यते दण्डः प्रजानां वधादि करः परस्मै राज्ञे देयोऽशश्च यस्मात् तादृशः, धर्मप्रधानो राजा च। अजघन्यः प्रचेताः अजघन्योः पश्चिमोऽपि प्रचेता वरुणः इति विलक्षणत्वं वरुणस्य पश्चिमदिगधिपतित्वात्, पक्षे—अजघन्यो नीचवृत्तिरहितः प्रकृष्टं चेतो यस्य तादृशश्च। अनुत्तरो धनदः उत्तरास्यां दिशि न विद्यमानोऽपि धनदः कुबेरः इति विलक्षणत्वं कुबेरस्योत्तरदिग्वर्तित्वात्, पक्षे—न विद्यते उत्तर उत्कृष्टतरो यस्मादित्यनुत्तरो, धनं वित्तं ददातीति तादृशश्च। राजनीन्द्रत्वाद्यारोप इति रूपकम्, किन्तु तस्य पूर्वदिङ्निवासाद्यभावप्रतिपादनान्न्यूनतया वर्णितेति कुवलयानन्दमतेन सर्वत्र न्यूनाभेदरूपकम्। श्लेषबलेन द्वितीयोऽप्यर्थः सूच्यते।

येन प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया श्रवणोत्पलदलायमानमानिनीमानलुण्टाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सातेन भुक्ता। यस्या सकलजनमनोहारिविशेषकं पृथुललाटमण्डलम्, अभिलषणीयकान्तयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नासिक्यभागः, बहुलवलीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिविलासः काञ्चीप्रदेशः। किं बहुना, यस्या कृष्णागुरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा नृत्यतीवाङ्गरङ्गे रमणीयतया निरुपमा नवा यौवनश्रीः।

उसकी भुजदण्ड मण्डली में विजय-श्री विश्राम पाती थी, उसके नेत्र कानों में लगाए हुए कमल पत्र के समान प्रतीत होते हुए मानिनियों का मान मर्दन करने वाले थे। एवं वह कामरूप (आसाम) देश को अपने अन्दर धारण करने वाली पृथ्वी का तथा कामनीय रूपवती प्रिया का सुख से भोग करता था।

पृथ्वी-पक्ष में—उससे भोग्य पृथ्वी में सकल जनों के मन को हरने वाला विशेषक देश है, विशाल लाटमण्डल है अभिलषणीय कान्ति वाले कुन्तल देश हैं, प्रशंसनीय नासिक्य देश है, बहुत सी लवली-लताओं से युक्त तथा सरोवर-मालाओं से अलंकृत मध्यप्रदेश है, कामकोटि देवी के विलास को प्रकट करने वाला काञ्ची प्रदेश है। बहुत क्या, पिप्पली, अगुरु तथा चन्दन के सौरभ से एवं बहुत से लकुच देशों के विस्तार से भूषित उसकी वनश्री अनुपम वायु के चलने पर अङ्गदेश रूपी रङ्गस्थल में नाचती सी है।

प्रिया-पक्ष में— एवं उसकी भोग्य प्रिया का विशाल ललाट-मण्डल था; जिस पर लगा हुआ तिलक सब जनों के मन को हरता था, स्पृहणीय कान्ति वाले केश थे, श्लाघ्य नासिका-भाग था, बहुत सी उदर रेखाओं से युक्त तथा रोम पंक्ति से अलंकृत मध्यदेश था, और कामदेव के चरमोत्कर्ष के विलास को प्रकट करने वाला जघन प्रदेश था। बहुत क्या, कृष्णागुरु तथा चन्दन के सौरभ से अत्यधिक वासित कुच-विस्तार से अलंकृत अनुपम, नवीन यौवनश्री रमणीयता से उसके अङ्गरूपी रङ्गस्थल पर नृत्य करती रहती थी।

प्रचण्डायां प्रोच्चण्डायां दोर्दण्डमण्डल्यां भुजवल्लयां विश्रान्ताया कृतविश्रामा विजयश्रीर्जयलक्ष्मीर्यस्य तथाविधेन, [अत्र विजये श्रीत्वारोपो दोर्दण्डमण्डल्यां पर्यङ्कत्वारोपनिमित्तम्, स च पर्यङ्कत्वारोपो न शाब्दः तेनैकदेशविवर्तिरूपकम्], श्रवणोत्पलदलायमाने कर्णकमलपत्रायमाणे मानिनीनां मानवतीनां मानस्य कोपस्य लुण्टाके अपहारके च लोचने नेत्रे यस्य तथाविधेन येन नलेन [अत्र च्युङ्गुपमा], कामरूपधारिणि पृथ्वी कामरूपाख्य प्रदेशयुक्ता भूमिः, कामरूपधारिणी प्रिया च स्पृहणीयरूपसमन्विता पत्नी च सातेन सुखेन भुक्ता निर्विष्टा, [अत्र पृथ्वीप्रिययोरुभयोरपि प्रकृतित्वाद् भोगरूपैकधर्मसम्बन्धाच्च तुल्ययोगिता]। यस्याः पृथिव्याः सकलजनानां समस्तप्रजानां मनोहारी चित्ताकर्षको विशेषकः पुण्ड्र देशो यत्र तादृशं विशेषकस्तु पुण्ड्रके विशेषाध्यायके-

ऽपिवा' इत्यनेकार्थसंग्रहः)। पुण्ड्रको देशभेदः। पृथु विशालं ललाटमण्डलं लाटाख्यो जनपदो विद्यते। यस्याः प्रियायाश्च—सकलजनानां मनोहारी विशेषकस्तिलको यत्र तादृशं, ('विशेषकः स्यात् तिलके' इति विश्वः), पृथु विशालं ललाटमण्डलं मस्तकचक्रवालं विद्यते। यस्याः पृथिव्या अभिलषणीया स्पृहणीयकान्तिः शोभा येषां यथाविधाः कुन्तलाः कुन्तलाख्यदेशा विद्यन्ते। यस्याः प्रियायाश्च अभिलषनीय कान्तयः कुन्तलाः केशाः। यस्याः पृथिव्याः श्लाघनीयः प्रशसनीयो नासिक्यभागो नासिक्यप्रदेशः। यस्याः प्रियायाश्च—श्लाघनीयो नासिक्यभागः नासिकाभवप्रदेशः। यस्याः पृथिव्याः वहु-लवलीकः बह्वयः प्रचुरा लवल्यो लताविशेषा यत्र तादृशः सरोमालिकालंकारश्च सरोमालिका तडागपङ्क्तिरलंकारो भूषणं यस्य तादृशश्च मध्यदेशो मध्यप्रदेशो विद्यते। यस्याः प्रियायाश्च—बहुल-वलीकः बहुलाः बह्वयो वल्य उदररेखा यत्र तादृशः स-रोमालिकालंकारश्च रोमालिका रोमपङ्क्तिरेवालंकारस्तेन संहितश्च मध्यदेश उदरभागो विद्यते। यस्याः पृथिव्याः प्रकटितकामकोटि-विलासः प्रकटितः प्रकाशितः कामकोट्यास्तन्नाम्न्या देव्या विलासो येन तादृशः काञ्चीप्रदेशः काञ्चीनामा देशविशेषः। यस्याः प्रियायाश्च-प्रकटितः कामकोटिविलासो मदनोत्कर्षविभ्रमो येन तादृशः काञ्चीप्रदेशः श्रोणीभारो विद्यते। किं बहुना किमधिकेन? यस्याः पृथिव्याः कृष्णा पिप्पली अगुरुः अगरुवृक्षः चन्दनो मलयजवृक्षः तेषाम् आमोदः सौरभं, बहुनामनेकेषां लकुचानां लकुचवृक्षाणाम् आभोगो विस्तारश्च, तौ भूषणमलङ्कारो यस्याः सा वनश्रीर्विपिनशोभा निरुपमान-वायौ अनुपमसमीरे वाति सति रमणीयतया रम्यतया अङ्गरङ्गे अङ्गदेशरूपरङ्गस्थले नृत्यतीव नर्तनं करोतीव। यस्याः प्रियायाश्च-कृष्णागुरोः श्यामागरुद्रव्यस्य चन्दनस्य मलयजस्य चामोदेन सौरभेण बहुलो व्याप्तः कुचाभोगः स्तनविस्तारो भूषण मण्डनं यस्याः सा निरुपमाऽनुपमा नवा नूतना यौवनश्रीस्तारुण्यशोभा रमणीयतया रम्यतया अङ्गरङ्गे शरीरावयवरूपरङ्गस्थले नृत्यतीव। अत्र सकलजनेत्यारभ्य सर्वत्र श्लेषालंकारः, अङ्गरङ्ग इत्यत्र रूपकं, नृत्यतीवेत्युत्प्रेक्षा।

किं चान्यत्। अन्य एव नवावतारः स कोऽपि पुरुषोत्तमो यो न मीनरूपदूषितः, नाङ्गीकृतविश्वविश्वंभराभारोऽपि कूर्मीकृतात्मा, न वराहवपुषा

क्लेशेन पृथ्वीं बभार, न च नरसिंहः समुत्सन्नहिरण्यकशिपुः, न बलिराजबन्धनविधौ वामनो दैन्यमकरोत्, नापि रामो लङ्केश्वरश्रियमपाहरत् नापि बुद्धः कल्किकुलावतारी।

और अधिक क्या, वह नल अन्य ही नवीन अवतार लिए हुए कोई विलक्षण पुरुषोत्तम (विष्णु) था, जो मत्स्यावतार से दूषित नहीं हुआ था। उसने पृथ्वी का भार स्वीकार किया हुआ था तो भी कच्छपावतार नहीं लिया था। न ही वह वराहावतार लेकर अक्लेष से पृथ्वी को धारण करता था। न ही उसने नरसिंहावतार लेकर हिरण्यकशिपु का संहार किया था। न ही वामनावतार लेकर बलिराज को बाँधने के व्यापार में दीनता दिखाई थी। न ही रामावतार लेकर लंकापति रावण की श्री का अपहरण किया था। न ही वह बुद्ध था, न उसने कल्कि कुल में अवतार लिया था।

द्वितीय अर्थ—वह नल नवीन (पूर्वों की अपेक्षा अधिक विलक्षण) जन्म वाला कोई पुरुष श्रेष्ठ था, जो नीरोग (अथवा शत्रुओं को नवाने वाला) था तथा रूप में अदूषित था। उसने पृथ्वी का राज्यभार अपने ऊपर उठाया हुआ था, तो भी शरीर को पीड़ा से नीचे नहीं झुकाता था। न हीं वह बड़े-बड़े युद्धों को जन्म देने वाले क्लेश से पृथ्वी को धारण, करता था, अपितु अनायास धारण करता था। वह नरों में सिंह था, पर किसी के हिरण्य. भोजनाच्छादनादि को नहीं छीनता था। न वह बलवान् शत्रु-राजाओं के बन्धन-कार्य में मन की दीनता दिखलाता था। वह सुन्दर था, तथा ब्रह्मा व शिव की श्री का अपहरण नहीं करता था। वह विद्वान् था और पापी-कुल में उत्पन्न नहीं हुआ था।

किं चान्यत्। स नलः अन्य एव विलक्षण एव कोऽपि नवावतारः कश्चन नूतनावतारः पुरुषोत्तमो विष्णुः, यो न मीनरूप-दूषितः मीनरूपेण मत्स्याकारेण दूषितो विकृतो नेति विलक्षणत्वं, विष्णोर्मीनरूपदूषितत्वात्। पक्षे—यो नलः पुरुषोत्तमः पुरुषेषूत्तमः, अनमी अमी रुग्णः (अम रोगे) न अमी अनमी अरुग्णः यद्वा नमी नमयति शत्रूनिति तादृशः न रूपदूषितः रूपे आकृतौ दूषितो विकृतश्च न। अङ्गीकृत-विश्व-विश्वम्भरा-भारोऽपि स्वीकृत-समग्र-भू-भरोऽपि न कूर्मीकृतात्मा कूर्मीकृतः कच्छपीकृत आत्मा स्वरूपं येन तादृशो नेति विलक्षणत्वं, विष्णोर्भूभारधारणार्थं गृहीतकूर्मावतारत्वात्। पक्षे—यो नलः स्वीकृतराज्यभारोऽपि न कूर्मीकृतात्मा कूर्मीकृतः पीडयाऽऽकुञ्चित आत्मा देहो येन तादृशो न,

सुखेनैव स राज्यभारमुवाहेत्यर्थः न वाराहवपुषा वराहावतारेण अक्लेशेन सुखेन पृथ्वीं बभारं भुवं दध्रे इति विलक्षणत्वं, विष्णोर्भूधारणाय धृतवराहावतारत्वात्। पक्षे—वराहवपुषा वरं श्रेष्ठमाहवं युद्धं पुष्णातीति तेन क्लेशेनाऽऽयासेन न, किन्तु सुखेनैव पृथ्वीं बभार राज्यं सञ्चालयामास। न च नापि समुत्सन्न-हिरण्यकशिपुः समुत्पन्न उच्छिन्नो हिरण्यकशिपुस्तन्नामा दैत्यः प्रह्लादपिता येन स नरसिंहो नृसिंहावतारधरः इति विलक्षणत्वं, विष्णोर्नरसिंहावतारधारित्वात्। पक्षे—नरसिंहः पुरुषश्रेष्ठः सन्नपि समुत्सन्न हिरण्य-कशिपुनं समुत्सन्नं समुच्छिन्नं हिरण्यं सुवर्णं कपिशु भोजनाच्छादनानि च येन तादृशो न, (कशिपुस्त्वन्नामाच्छादनं द्वयम्' इत्यमरः) न नामि बामलो वामनावतारः सन् बलिराज-बन्धन-विधौ दैत्यराजस्य बलेर्निगडनकर्मणि दैन्यमकरोत् दीनतां स्वीचकारेति विलक्षणत्वं, विष्णुना तथा कृतत्वात्। पक्षे—बलिनां बलवतां राज्ञां नृपतीनां बन्धनविधौ संयमन कर्मणि मनोदैन्यं वा चित्तखेदं च नाकरोत्। नापि न च रामो दाशरथिः सन् लङ्केश्वरश्रियं दशाननलक्ष्मीम् अपाहरत् आच्छिन्नवान् इति विलक्षणत्वं विष्णुना तथा कृतत्वात्। पक्षे—रामः सुन्दरोऽसौ नलः अलम् अत्यर्थं केश्वरश्रियं कस्य ब्रह्मण ईश्वरस्य शिवस्य च श्रियं लक्ष्मीं नापाहरत् देवस्वापहारी नेत्यर्थः। नापि न च बुद्धः सुगतः कल्किकुलावतारी च गृहीतकल्क्यवतारश्च, पुरुषोत्तमो विष्णुः सन्नहि बुद्धावतार कल्क्यवतार च न गृहीतवानिति विलक्षणत्वम्। पक्षे—बुद्धो विद्वानासीत्, परं कल्किकुलावतारी पापिकुलोत्पन्ना न ('कल्कोऽस्त्री शमलैनसोः, इत्यमरः)। अत्र नले पुरुषोत्तमत्वारोपेऽपि मीनरूपदूषतत्वाचभावर्णनात् कुवलयानन्दमतेन न्यूनाभेदरूपकम्। अथवा विरोधाभासः। तयोश्चान्यतरसाधकबाधकाभावात् सन्देहसंकरः।

किं बहुना।

> धन्यास्ते दिवसाः स येषु समभूद् भूपालचूडामणि-
> र्लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमहीविश्रान्तकीर्तिनलः।
> लोकास्तेऽपि चिरंतनाः सुकृतिनस्तद्वक्त्रपङ्केरुहे-
> र्यैर्विस्फारितनेत्रपत्रपुटकैर्लावण्यमास्वादितम् ॥३४॥

बहुत क्या, "वे दिन धन्य थे जिनमें लोकालोक पर्वतेन्द्र से मुद्रित भूमि

पर विश्रान्त कीर्ति वाला भूपाल-चूडामणि नल विद्यमान था। वे प्राचीन लोग भी भाग्यशाली थे जिन्होंने अपने विस्तारित नेत्र रूपी पत्रपुटों से उसके मुखारविन्द के लावण्य का पान किया था।

किं बहुना किमधिकेन। ते दिवसास्ते वासरा धान्याः पुण्या आसन् येषु दिवशेषु सः असौ भूपालचूडामणिर्नृपमूर्धन्यः, लोकालोकगिरीन्द्राभ्यां लोकालोकपर्वताभ्यां मुद्रिता समाच्छन्ना या मही भूमिस्तत्र विश्रान्ता स्थिता कीर्तिर्यशो यस्य तादृश नलो नलनृपतिः समभूत् समुत्पन्नः। ते चिरन्तनास्ते प्राक्तना लोका जना अपि सुकृतिनः पुण्यशालिनः यैर्विस्फारितनेत्रपुटकैः विस्फारितानि उन्मीलितानि नेत्राणि लोचनान्येव पत्रपुटकानि चषकाणि तैः तद्वक्त्रपङ्करुहे तस्य नलस्य वक्त्रं मुखमेव पङ्करुहं कमल तस्मिन् लावण्यम् अपूर्वसौन्दर्यम् आस्वादितम् पीतम्। अत्र नलजन्मवर्णनद्वारा तदीयदिवसमहिमाख्यानादुदात्तालंकारः। भूपालश्चूडामणिरिवेति लुप्तोपमा। वक्त्रमेवपङ्करुहमिति रूपकम् नेत्रेषु पत्रपुटकत्वारोपः शब्दः, लावण्य च मधुत्वारोप आर्थं इत्येकदेशविवर्त्ति साङ्गं रूपकम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

अपि च।

> ये कुन्दद्युतयः समस्तभुवनैः कर्णावतंसीकृता
> यैः सर्वत्र शलाकयेव लिखितैर्दिग्भित्तयश्चित्रिताः।
> यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षेण रोमाञ्चिता-
> स्तेषां पार्थिवपुंगवः स महतामेको गुणानां निधिः। ३५॥

और, कुन्द पुष्प के समान धवल कान्ति वाले जिन गुणों को समस्त भुवनों ने कर्णाभूषण बनाया है, सर्वत्र मानों शलाका द्वारा लिखे हुए जिनसे दिग्भित्तियाँ चित्रित हैं, जिन्हें वर्णन करने का हृदय में विचार आते ही हम हर्ष से रोमांचित हो उठते हैं, उन महान् गुणों का वह नृपपुंगव अद्वितीय निधि था।

अपि च किं च। कुन्दद्युतयो माध्यकुसुमवद् धवलकान्तयो ये गुणाः समस्तभुवनैरखिललोकैः कर्णावतंसीकृताः श्रवणभूषणीकृतः यैः; सर्वत्र सर्वेषु स्थानेषु शलाकयेव लोहलेखन्येव लिखितैरङ्कितैः दिग्भित्तयो दिगन्तकुड्यानि चित्रिताः शोभिताः यैर्वक्तुं व्याहर्तुं हृदि कल्पितैरपि चित्ते चिन्तितैरपि वयं

हर्षेण प्रमोदेन रोमाञ्चिता: पुलकिता भवाम:, तेषां महतां विशालानां गुणानां दयादाक्षिण्यशौर्यादीनां स पार्थिवपुंगवो नृपश्रेष्ठो नल: एकोऽद्वितीयो निधि: कोशो विद्यते। कुन्दद्युतय इत्यत्र कुन्दस्य द्युतिरिति च द्युतिर्येषामिप्युपमानधर्म-वाचकलोपे समासगा लुप्तोपमा। न कर्णावतंसा: कर्णावत्तंसा: सम्पद्यमाना: कृता इति रूपकम्। दिक्षु भित्तित्वारोपेऽपि रूपकम्। शलाकमेव लिखितैरित्यु-त्प्रेक्षा। वक्तुं चिन्तितमात्रैरपि यैर्वयं हर्षेण रोमाञ्चिता:, किमुतोक्यमानैरिति कैमुत्येनार्थसंसिद्धिरूपार्थापत्ति:। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न क्वचिदपार्थो वचनक्रम:, मरुमण्डलमिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीवमिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम्। यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिक:। शान्तनुतनयोऽपि न कुरूपयुक्त:।

उसका वचन क्रम कभी निरर्थक (अपार्थ) नहीं होता था, जैसे युधिष्ठिर का वचनक्रम पार्थभिन्न (कुन्तीपुत्र से भिन्न का) नहीं कहलाता। मन पाप-रहित था, जैसे मरुस्थल जल रहित होता है। कर्मशुभ उपकार से सारवान् था, जैसे रसोईघर रसोइयों से सारवान् होता है। दान कोटि संख्या में होता था, जैसे धनुष कोटियों पर बंधी प्रत्यंचा वाला होता है। राज्य में धर्म, त्यौहार तथा उत्सव दिखाई देते थे, जैसे दानवकुल में वृषपर्वा नामक दानवेन्द्र का उत्सव दिखाई देता है। हृदय सर्वदा भ्रमरहित था, जैसे कमल भ्रमरों के लिए हितकर होता है। और वह परम क्रीड़ा में तत्पर था, परन्तु नर नारियों में आसक्त नहीं था (विरोध पक्ष में—परकीय महिलाओं में रत होते हुये भी परदारासक्त नहीं था)। उसकी नीति शान्त तथा प्रशंसित थी और उसका रूप कुत्सित नहीं था (विरोधशान्तनु का पुत्र भीष्म होते हुए भी कौरव पक्ष का नहीं था)।

यस्य च नलस्य वचनक्रमो वच: परिपाटी युधिष्ठिरस्येव धर्मराजस्येव क्वचित् कुत्रापि अपार्थ: अपगतोऽर्थ: सारो यस्मात् तादृश: निरर्थक इत्यर्थ: नासीत्, पक्षे—अपार्थ: पार्थोक्तिभिन्न: युधिष्ठिरस्य पृथाया अपत्यत्वाद्, मानसं मन: मरुमण्डलमिव मरुस्थलमिव अपापं पापरहितम् आसीत्, पक्षे—अपगता आपो जलानि यस्मात् तादृशम्। कर्म क्रियाकाण्डं महानसमिव पाकगृहमिव

सूपकारसारं शोभनः उपकारः परार्थसाधनमेव सारो यत्र तादृशम् आसीत्, पक्षे— सूपकाराः पाचकाः विशेषभूता यत्र तत्। दानं त्यागः कार्मुकमिव धनुरिव सत्-कोटिगुणं सन्तो विद्यमानाः कोटिगुणाः कोटिसंख्यका लाभा यस्य तादृशम् आसीत्, पक्षे—सन्तो विद्यमानाः कोटी अटन्यौ गुणो मौर्वी। च यत्र तादृशम्। राज्यम् अधिपत्यं। दानवकुलमिव दैत्यदलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं दृष्टोऽवलोकितो वृषो धर्मः पर्वं पौर्णमास्यादि उत्सवः पुत्रजन्मविवाहादिश्च यत्र तादृशम् आसीत्, पक्षे – दृष्टो वृषपर्वणस्तदाख्यादानवस्य उत्सवो यत्र तादृशम् हृदये चित्तं सर्वदा राजीवमिव कमलमिव भ्रम-रहितम् भ्रान्तिशून्यम् आसीत्, पक्षे—भ्रमराणां षट्पदानां हितं हितकरम्। श्लिष्टोपमालंकारः।

यश्च नलः पर-महेलाभिरतोऽपि परकीयनारीष्वासक्तोऽपि आपरदारिकः परदारेषु अनासक्तः इति विरोधः, परिहारस्तु—परमा या हेला विलासक्रीडा-स्तासु अभिरतः संलग्न इति। शान्तनु-तनयोऽपि शान्तनोः पुत्रो भीष्मोऽपि न कुरु-उपयुक्तः कुरुपक्षपाती नेति विरोधः, परिहारस्तु—शान्त—नुत—नयः शान्तः शान्तियुक्तो नुतः स्तुतो नयो नीतिर्यस्य तादृशोऽपि कु-रूप-युक्तः कुत्सितेन रूपेण समन्वितो न, किन्तु सर्वाङ्गसुन्दर एव श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासोऽलंकारः।

किं बहुना।

सदाहंसाकुलं बिभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम्।
भूभृन्नाथोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥३६॥

बहुत क्या, यद्यपि हिमालय और नल दोनों ही भूभृन्नाथ थे—नल राजाओं का नाथ था तथा हिमालय पर्वतों का नाथ, परन्तु सदा हंसों से परिपूर्ण, चंचल जल वाले मानस (मान-सरोवर) को धारण करने वाला वह हिमालय उस नल की समता नहीं कर पाता था, क्योंकि उक्त प्रकार के मानस को धारण करना उसके लिए दाह-युक्त व्याकुल, कांपते हुए तथा जड़ मानस (मन) को धारण करने के समान हो जाता था।

किं बहुना किमधिकेन। सदा सर्वदा हंसाकुलं हंसैः कादम्बैराकुलं व्याप्तं, प्रचलज्जल प्रचलत् तरङ्गितं जलं वारि यत्र तादृशं मानसं मानसरोवरं बिभ्रत् धारयन् भूभृन्नाथोऽपि भूभृतां पर्वतानां नाथत्वाद् भूभृन्नाथशब्दभागपि हिमाचलो हिमालयः, सदाहं दाहेन सन्तापेन सहितं, साकुलं व्याकुलं प्रचलत् भिया कम्पमानं,

डलयोरभेद इति न्यायेन जलं जड श्लथं मानसं चित्त विभ्रद् धारयन्निव यस्य भूभृतां नृपाणां नाथत्वाद् भूभृन्नाथशब्दभाजो नलस्य साम्यं तुलनां नो याति नाधिरोहति । हिमाचलस्तस्य साम्यं न बिभर्तीति तस्याधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकालंकारः । सदाहं साकुलं प्रचलद् जड मानस बिभ्रदिवेति श्लेषमूलाप्रतीयमानोत्प्रेक्षा: तयो: संकर: ।

अपि च:

नक्षत्र भू: क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नभोगैः खलु भोगभाजः ।
सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां कांचन काञ्चनाद्रिः ॥३८॥

यद्यपि राजा नल तथा सुमेरु पर्वत दोनों ही सुजातरूप थे – नल सुरूपवान् था तथा सुमेरु सुवर्णवान्. तो भी सुमेरु पर्वत राजा नल की कुछ भी समानता को प्राप्त नहीं करता था, क्योंकि सुमेरु क्षत्रिय से उत्पन्न नहीं था (अपितु नक्षत्रों का विचरण स्थान था), जबकि नल क्षत्रिय कुल से उत्पन्न था, और सुमेरु भोगों से युक्त नहीं था (अपितु. गगनचारी देवों से युक्त था), जबकि नल भोगों को भोगने वाला था ।

अपि च किं च, सुजातरूपोऽपि शोभनं जातरूपं सुवर्णं यत्र तादृशोऽपि, नलपक्षे —सुष्ठु जातमुत्पन्नं रूप सौन्दर्यं यस्य तादृशः, काञ्चनाद्रिः, समेरुपर्वतः नक्षत्रभूः, नक्षत्राणां तारकाणां भूः स्थानं, पक्षे—न क्षत्राद् भवतीति तादृशश्च सन्, क्षत्रकुलप्रसूतेः क्षत्रकुलात् क्षत्रियवंशात् प्रसूतिर्जन्म यस्य तादृशस्य, तथा नभोगैर्युक्तः खलु नभस्याकाशे गच्छन्ति विहरन्तीति नभोगा देवास्तैः समन्वितः किल, पक्षे—भोगैर्न युक्तश्च सन्, भोगभाजो भोजैर्युक्तस्य यस्य नलस्य कांचन समानतां किमपि साम्य न याति न गच्छति । यद्यपि सुजातरूपत्वं नूभयोः समान, तथापि काञ्चनाद्रिर्नक्षत्रभूः नलश्च क्षत्रभूः, तथा काञ्चनाद्रिर्नभोगैर्युक्तो नलश्च भोगैर्युक्त इनि वैषम्यमस्त्येवेति तात्पर्यार्थः नक्षत्रभूः, नभोगैः, सुजातरूप इति शब्दाः श्लिष्टाः । अत्र काञ्चनाद्रेः सुजातरूप इति विशेषण साभिप्रायमिति परिकरः । स च तादृशोऽपि समानतां न यातीति विशेषोक्तिमुत्थापयति । सा विशेषोक्तिः पुनः सुजातरूपोऽपि काञ्चनाद्रिस्तस्य नृपस्य काचन समानतां कुतो नावहतीत्यनुपपद्यमानाया उक्तेः 'स नृपः क्षत्रकुले प्रसूतियस्य

ादृशोऽस्ति, काञ्चनाद्रिस्तु न—क्षत्रभूः' इति वाक्यार्थो निष्पादको हेतुरिति काव्यलिङ्गम् । व्यतिरेकश्च स्पष्ट एव । स च व्यतिरेकः काव्यलिङ्गस्याङ्गम् । ेन तयोः संकरः । उपजातिवृत्तम् ।

महामन्त्रि-वर्णनम्

तस्य च महामहीपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सकलश्रुतिशास्त्रशासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहणाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, इन्दुः पार्थिवनीतिज्योत्स्नयाः, कन्दः सकलकलाङ्कुरकलापस्य सागर समस्तपुरुषगुणमणीनाम् आलानस्तम्भश्चपलराज्यलक्ष्मीकरेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपारावारनौकर्णधारः, सुधाम्भोनिधिडिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयखण्डमण्डिता सकलसंसारसराः, सरागीकृतसमस्तपार्थिवानुजीवी, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमशरीरमात्रभिन्नो द्वितीय इवात्मा, कुलक्रमागतः संक्रान्तिदर्पणः सुखदुःखयोः, स्वभावानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतवाक् कृतज्ञो ब्राह्मणः सालङ्कायनस्य सूनुः श्रुतशीलो नाम महामन्त्री ।

सालंकायन का पुत्र श्रुतशील नाम का ब्राह्मण उस राजा का महामन्त्री था। वह समस्त वेदों तथा (स्मृत्यादि) शास्त्रों के आदेशों की अक्षरमाला का प्रशस्तिस्तम्भ था, पुण्यकर्म रूपी जटा-प्ररोहों का वटवृक्ष था, सद्व्यवहार रूपी रत्नों की खान था, राजनीति रूपी चाँदनी का चन्द्र था, सकल कलाओं रूपी अंकुरों का कन्द था, समस्त पुरुषगुण रूपी मणियों का सागर था, चंचल राज्यलक्ष्मी रूपी हथिनी का बन्धन स्तम्भ था, सकल लोक व्यापार रूपी समुद्र का नाविक था, अमृत-सागर के फेन-पिण्डों के समान धवल अपने कीर्तिकमल-समूह से उसने सकल संसार रूपी सरोवर को अलंकृत किया हुआ था, समस्त राजानुजीवी उस पर अनुरक्त थे। वह राजा का जीवन-रूप था, प्राणसम था, हृदयसम था, शरीर मात्र से भिन्न मानो दूसरा आत्मा था। कुलक्रमागत, राजा के सुख-दुःख का सक्रान्ति-दर्पण, स्वभाव से अनुरक्त, पवित्र; सत्य से पूत वाला और कृतज्ञ था।

तस्य च महीपते राज्ञो नलस्य अस्ति स्म आसीत् प्रशस्तिस्तम्भः कीर्तिस्तम्भः सकलानां समस्तानां श्रुतीनां वेदानां शास्त्राणां स्मृत्यादिग्रन्थानां च यानि

शासनान्यादेशवाक्यानि तेषु या अक्षरमालिकाः वर्णपङ्क्तयस्तासाम् न्यग्रोध-पादपो वटतरुः पुण्यकर्माणि धर्मकार्याण्येव प्ररोहा मूलानि तेषाम्, आकरः खनिः साधुव्यवहाराः शिष्टाचारा एव रत्नानि मणयस्तेषाम्, इन्दुश्चन्द्रमाः पार्थिव-नीति राजनय एव ज्योत्स्ना चन्द्रिका, तस्याः, कन्दो मूलफलं सकलाः समस्ताः कला विद्या एव अंकुराः प्ररोहास्तेषां कलापस्य समूहस्य, सागरो रत्नाकरः समस्ताः सकलाः पुरुषगुणा नरगुणा एव मणयो रत्नानि तेषाम्, आलान-स्तम्भो बन्धनस्थूणा चपला चंचला राज्यलक्ष्मीः राज्यश्रीरेव करेणुका गजवशा तस्याः । सकलो निखिलो भुवनव्यापारो लोककार्यमेव पारावारो जलधिस्तस्य नौकर्णधारो नाविकः, सुधाम्भोनिधेः पीयूषसागरस्य यानि डिण्डीरपिण्डानि फेन-पटलानि तद्वत् पाण्डुरा धवला ये यशःकुशेशयखण्डाः कीर्तिकमलसमूहास्तै-र्मण्डितं शोभितं सकलसंसारः समस्तं जगदेव सः कासारो येन तादृशः, सरागी-कृता अनुरागवन्तो विहिताः समस्ताः सकलाः पार्थिवानुजीविनो राजाश्रिता जना येन तादृशः, जीवितसमो जीवितेन जीवनेन समस्तुल्यः, प्राणसमः प्राणैरसुभिः समः, हृदयसमो हृदयेन चित्तेन समः, शरीरमात्रभिन्नः शरीरमात्रेण केवलेन देहे-नैव भिन्नः पृथग् विद्यमानः, द्वितीय इव आत्मा इतर इव निजात्मा, कुलक्रमागतो वंशपरम्पराप्राप्तः संक्रान्तिदर्पणः सक्रमणादर्शः सुखदुःखयोर्हर्षविषादयोः, स्वभाव-नुरक्तः स्वभावेन प्रकृत्यैव अनुरक्तोऽनुरागवान्, शुचिः पवित्रः, सत्यपूतवाक् सत्येन सत्यभाषणेन पूता पवित्रा वाग् वाणी यस्य सः कृतज्ञः कृतमुपकारं बहुमन्य-मानः, ब्राह्मणो विप्रः, सालंकायनस्य सूनुः सालङ्कायनतनयः श्रुतशीलो नाम श्रुतशीलाख्यो महामन्त्री महासचिवः । अत्र परम्परितरूपकोल्लेखयोः संकरः । द्वितीय इवात्मेत्युत्प्रेक्षा ।

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्यावयः शीलगुणैः समानः ।
बभूव भूपस्य स तस्य विप्रो विश्वंभराभारसहः सहायः ॥३८॥

वह ब्राह्मण उस राजा का मित्र था, मन्त्री था, सुहृत था, प्रिय था विद्या, आयु, शील आदि गुणों से समान एवं विश्वंभरा के भार को वहन करने वाला सहायक था ।

स विप्रः असौ श्रुतशीलो नाम ब्राह्मणः, तस्य भूपस्य तस्य नृपस्य नलस्य

मित्रं च सखा च मन्त्री च सचिवश्च, प्रियेः सुहृच्च स्निग्धो वयस्यश्च, विद्या-वयः शीलगुणैः समानः विद्या ज्ञानं वयः आयुः शीलं सदाचारो गुणा दयादाक्षिण्या-दयस्तैः समानस्तुल्यः, विश्वम्भराभारसहः विश्वंभराया धरित्र्या भारं सहते वहतीति तादृशः सहायः सहायको बभूव जज्ञे । उपजातिवृ त्तम् । अत्र विद्यावयः शीलगुणैः समानता विश्वंभराभारसहत्व च राज्ञो मित्रत्वस्य सुहृत्त्वस्य च निष्पत्तौ हेतुत्वेनोक्ते इति काव्यलिङ्गम् । एकस्यानेकधोल्लेखादुल्लेखोऽपि । तयोः संकरः ।

अपि च ।

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः ।
सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा तादृग्दृश्यते श्रूयते वा ॥२६॥

और, वह ब्राह्मणों का हितकारी था, ब्रह्मवेत्ता था, सन्ताप को हरने वाला था, सस्त्रीक था, प्रायशः विप्रजनों से युक्त रहता था, उत्तम वेश धारण करता था, द्वेष से उसका चित्त निर्मुक्त था । उसके समान अन्य कौन देखा या सुना जाता है ?

विरोध पक्ष में—वह ब्राह्मणों का हितकारी होता हुआ भी ब्राह्मणों के धन का अपहरण करने वाला था, स्त्रीयुक्त रहता हुआ भी प्रायः विरही रहता था और द्वेषयुक्त होता हुआ भी द्वेष निर्मुक्त चित्तवाला था । वैसा अन्य कौन देखा या सुना जाता है !

अपि च किं च, ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मभ्यो ब्राह्मणेभ्यो हितोऽपि ब्रह्मवित्तापहारी ब्राह्मणां ब्राह्मणानां वित्त धनमहरत्याच्छिनत्तीति तादृशः इति विरोधः परिहार-स्तु-ब्रह्मविद् ब्रह्मज्ञः, तापहारी संतापहारकश्च । स्त्रीयुक्तोऽपि स्त्रिया पत्न्या युक्तोऽवियुक्तोऽपि विप्रयुक्तो वियुक्त इति विरोधः, परिहारस्तु-विप्रैर्ब्राह्मणैर्युक्तः समन्वितः । सद्वेषोऽपि द्वेषेण शात्रवेण सहितोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेता द्वेषेण शात्रवेण निर्मुक्तं रहितं चेतश्चित्तं यस्य तादृशः इति विरोधः परिहारस्तु सन् शोभनो वेषः परिधानं यस्य सः । तादृक् तथाविधः को वा कोऽन्यो दृश्यतेऽवलोक्यते श्रूयते वा निशम्यते वा । स श्रुतशीलो नाम नलस्य मन्त्री अपूर्व आसीदित्यर्थः विरोधाभासोऽलङ्कारः । शालिनी वृत्तम् ।

नृप-विलास-वर्णनम्

अथ स पार्थिवस्तस्मिन्नमात्ये परिजनपरिवृढे प्रौढप्रेमणि निगूढमन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने जनस्य, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनवयौवनारम्भमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जितमदनमहस्यपहसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजनमनसि लसल्लावण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षितचन्द्रमसि वयसि वर्तमाना मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्वः स्वयमनवरत सकलसंसारसुखसंदोहमन्वभूत् ।

वह राजा परिजनों के प्रभु प्रौढ़ प्रेम वाले, मन्त्रणा को गुप्त रखने वाले, स्त्री संभोग-रस को तुच्छ समझने वाले, उत्तम राज्य में अनुराग उत्पन्न करने वाले, प्रजा के लिये माता का सा आचरण करने वाले, सब छलों से निर्मुक्त बुद्धि वाले उस मन्त्री पर राज्य के प्रभूत चिन्ताभार को रखकर स्वयं अभिनव यौवन के प्रादुर्भाव से रमणीय. सुन्दर रमणीजनों के नयन तथा हृदय को प्रिये, प्रियंगु लता के समान शोभित, कामदेव के सौन्दर्य को भी जीतने वाली, सुरों तथा असुरों के सौभाग्य-यश को तिरस्कृत करने वाली समस्त जनों के मन को विस्मित करने वाली, विलसित लावण्यपुंज (सौन्दर्य, समुद्र जल पक्ष में खारेपन) से समुद्रों के जल को पराजित करने वाली, कान्ति से चन्द्रमा पर भी कटाक्ष करने वाली आयु को प्राप्त हुआ मानिनियों के यौवनधन का भान करता हुआ निरन्तर सकल सांसारिक सुखों को भोगता था।

अथ स पार्थिवो नलः परिजनपरिवृढे परिजनेषु परिवृढः समर्थस्तस्मिन् प्रौढप्रेमणि प्रौढमुत्कटं प्रेम स्नेहो यस्य तस्मिन्, निगूढमन्त्रे निगूढः सुगुप्तो मन्त्रो रहस्यं यत्र तस्मिन्, तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे न तृणं तृणं सम्पद्यमानं कृतमिति तृणीकृतम्, स्त्रीणां समूहः स्त्रैणं 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' इति नञ्, तृणीकृतस्तृणवत् तुच्छीकृतः स्त्रैणविषयस्य स्त्रीजनविलासस्य रसः स्वेदो येन तस्मिन्, सौराज्यरागजनने सौराज्ये प्रशस्तराजत्वे रागं जनानां प्रीतिं जनयतीति तादृशे, जनस्य प्रजाया जननीयमाने जननीवाचरति सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ सर्वोपधाभ्यः

समस्तच्छलेभ्यः शुद्धा निर्मला बुद्धिर्मतिर्यस्य तादृशे मन्त्रिणी मन्त्रवति तस्मिन् अमात्ये सचिवे श्रुतशीले राजस्याधिपत्यस्य प्राज्यं प्रभूत चिन्ताभारं चिन्तनभार निधाय समर्प्य, अभिनवेन नूतनेन यौवनारम्भेण तारुण्योदयेन रमणीये रम्ये, रम्याणां मनोहारिणां रमणीजनानां कान्तावर्गाणां नयनयोर्नेत्रयोः हृदयस्य चित्तस्य च प्रिये स्निग्धे, प्रियंगुभासि प्रियंगुवत् श्यामालतावद् भासते इति तस्मिन्, जितं परास्तं मदनस्य कन्दर्पस्य महस्तेजो येन तादृशे, अपहसित तिरस्कृत सुरासुराणां देवदैत्यानां सौभाग्यस्य सौन्दर्यस्य यशः कीर्तिर्येन तादृशे, विस्मापितानि चकितीकृतानि समस्त-जनानां सकलमानवानां मनांसि चेतांसि येन तादृशे, लसता शोभमानेन लावण्यपुञ्जेन कान्तिसमूहेन (पक्षे—लवणत्वसमूहेन) पराजितानि परास्तानि सकलसमुद्राणां समस्तसागराणाम् अम्भांसि सलिलानि येन तादृशे, कान्त्या कमनीयतया कटाक्षितः पराजितश्चन्द्रमाः सुधांशुर्येन तादृशे वयस्यायुषि यौवने वर्तमानो विद्यमानः, मानित सत्कृतं मानिनीजनानां मानवतीनां स्त्रीणां यौवनसर्वस्वं तारुण्यधनं येन तादृशः स्वयम् आत्मना अनवरतं निरन्तरं सकलस्य समस्तस्य संसारसुखस्य लौकिकानन्दस्य सन्दोहं समूहम् अन्वभूत् आस्वादितवान् ।

तथा हि, कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इवाहितापकारी हरिवाहनविलासमकरोत् । कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनबाणासनातिमुक्तशरसछादितायां पर्वतभुवि विजहार । कदाचिदच्युत इव शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकिततनुरनन्तभोगभाक् सुखमन्वतिष्ठत् । कदाचिन्नलिनयोनिरिव राजसभावस्थित. प्रजाव्यापारमचिन्तयत् ।

यथा, कभी अनुत्पन्न विषम युद्ध वाला, शत्रुओं का अपकारकारी वह अश्वरथ का आनन्द लेता था, जैसे विष से न मरने वाला, सर्पों का संतापकारी गरुड़ विष्णु का वाहन बनने का आनन्द लेता है । कभी मदन, बाण, असन, अतिमुक्त तथा शर नामक वृक्ष-झाड़ियों से आच्छादित पर्वतभूमि पर विहार करता था, जैसे शिव कामदेव के धनुष से छोड़े हुए शरों से आच्छादित पार्वती में विहार करते हैं । कभी शीतल, कमल खिले सरोवरों में अवगाहन करने से उसका शरीर रोमांचित हो जाता था और वह अनन्त भोगों का सेवन करता हुआ

सुख पाता था, जैसे विष्णु जी का शरीर लक्ष्मी के शीतल हाथ के स्पर्श से रोमांचित हो जाता है और वे शेषनाग (अनन्त) के शरीर पर बैठे हुए सुख पाते हैं। कभी राज-सभा में स्थित होकर प्रजा-कार्य का विचार करता था, जैसे ब्रह्मा जी राजस-भाव (रजोगुण) में स्थित होकर प्रजा उत्पन्न करने की चिन्ता करते हैं।

तथाहि, कदाचिद् जातुचिद् गरुड इव सुपर्ण इव अनुत्पन्न-विषमरणः अनुत्पन्नोऽसंजातो विषमो विकटो रणः संग्रामो यस्य सः, अहितापकारी अहितानां शत्रूणां अपकारी अपकारपरायणः सन् हरिवाहनविलास हरेरश्वस्य वाहनः रथस्तेन विलासं विहारानन्दम् अकरोत् व्यदधात्। गरुडस्तु-अनुत्पन्नविष-मरणः अनुत्पन्नं विषेण गरलेन मरणं मृत्युर्यस्य सः अहि-तापकारी अहीनां सर्पाणां तापकारी सन्तापकः सन् हरिवाहनविलास हरेर्विष्णोर्वाहनविलासो मानलीलातमकरोत्। कदाचित् चन्द्रमौलिरिव हिमांशुशेखरः शिव इव मदनो बाणोऽसनोऽतिमुक्तः शरश्च वृक्षक्षुपविशेषास्तैः संछादितायां परिपूर्णायां पर्वतभुवि शैलभूमौ विजहार बभ्राम्। चन्द्रमौलिस्तु—मदनस्य कामस्य बाणासनेन धनुषाऽतिमुक्ताः प्रक्षिप्ता ये शरा बाणास्तैः संछादितायां विधुरायां पर्वतभुवि पार्वत्या विजहार रेमे। कदाचिद् अच्युत इव विष्णुरिव शिशिरः शीतलो यः कमलाकर पद्माकरस्तत्र अवगाहनेन स्नानेन उत्पन्नाः संजाता ये पुलका रोमाञ्चास्तैः कोरकिता कुड्मलिता तनुः शरीरं यस्य सः अनन्तभोगभाग् अनन्तानसंख्यान् भोगान् विलासान् भजते प्राप्नोतीति सः सुखम् अन्वतिष्ठत् आनन्दमन्वगाहनेन स्पर्शेन उत्पन्नाः संजाता ये पुलका रोमाञ्चास्तैः कोरकिता कुड्मलिता तनुः शरीरं यस्य स, अनन्तस्य शेषनागस्य भोग शरीरं भजते सेवते इति तादृशश्च। कदाचिद् नलिनयोनिरिव कमलासनो ब्रह्मेव राज-सभावस्थितः राजसभायां नृपसंसदि अवस्थितः विराजितः प्रजाव्यापारं जनकार्यम् अचिन्तयत् व्यचारयत्। नलिनयोनिस्तु—राजसे रजोगुणमये भावे स्थितः प्रजाव्यापार प्रजोत्पत्तिकार्यमचिन्तयत्। सर्वत्र श्लिष्टोपमालंकारः।

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षमभजत्। कदाचिन्नक्षत्रराशिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितो मृगानुसारी बहुशष्पवन-

मार्गं बभ्राम। कदाचिदाञ्जनेय इवाक्षविनोदमन्वतिष्ठत्। कदाचिद्वान-रेश्वर इव सुग्रीवो वैदेहीति ब्रुवाणस्यालघुकाकुत्स्थस्यार्थिनः प्रार्थना-क्रियतां सफलेति वानरपुंगवानादिदेश।

कभी कान्ता के उभरे हुए मण्डलाकार पयोधरों के विलास से हर्ष पाता था, जैसे मोर रमणीक मेघों के उमड़ने पर मण्डलाकार नृत्य करता हुआ हर्ष पाता है। कभी आशुगामिनी सेना के साथ मृगों का पीछा करता हुआ घास से भरे वन-मार्ग में घूमता फिरता था, जैसे नक्षत्र-राशि सूर्य सहित अश्विनी नक्षत्र से समन्वित होती हुई तथा मृगशिरा नक्षत्र का अनुसरण करती हुई बहुधः आकाश में भ्रमण करती है। कभी अक्ष-क्रीड़ा (द्यूत) से मनोरंजन करता था, जैसे अंजनासुत हनुमान् ने अक्ष (रावण के पुत्र) का वध किया था। कभी 'भिक्षा दो' इस प्रकार बोलते हुए, क्षुद्र अभ्यर्थना में तत्पर याचक की प्रार्थना सफल की जाये ऐसा श्रेष्ठ राजपुरुषों को आदेश देता था, जैसे वानरराज सुग्रीव ने वानर श्रेष्ठों को यह आदेश दिया था कि 'सीता-सीता' कहते हुए प्रार्थी महान् राम की प्रार्थना सफल की जाये।

कदाचिद् मयूर इव शिखीव कान्ताया अङ्गनाया उन्नमन्तौ उद्गच्छन्तौ यौ पयोधरौ स्तनौ तत्र मण्डलि विलासेन चक्रक्रीडया हर्षमानन्दम् अभजत् प्राप। मयूरस्तु कान्ता रम्या उन्नमन्त उद्गच्छन्तो ये पयोधरा मेघास्तैर्यो मण्डलि-विलासः मण्डलाकारनृत्यं तेन हर्षं भजति। कदाचिद् नक्षत्रराशिरिव तारापुञ्ज इव अशिवन्या अश्वा अस्यां सन्तीति तया सेनया चम्वा समन्वितो युक्तो मृगानु-सारी मृगान् पशूननुसरतीति सः बहु-शष्प-वनमार्गं प्रचुरशष्पपरिपूर्णविपिनपथं बभ्राम भ्रमति स्म। अत्र 'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालोऽध्वा वा कर्मसंज्ञक इति वक्तव्यम्' इति कर्मत्वे कर्मणि द्वितीया। नक्षत्रराशिस्तु सेनया इनेन सूर्येण सहिता सेना तया अश्विन्या अश्विनीनक्षत्ररेखया समन्वितः, मृगं मृगशिरसं नक्षत्रमनुसरतीति सः, बहुशः प्रायशः पवनमार्गमाकाशं भ्रमति, ('बहु-शष्प-वन', 'बहुशः पवन'—एकत्रषकारः अपरत्र विसर्जनीय उपध्मानीयो वा। तदेव रूप-भेदेऽपि श्रुतिसाम्यान्न दोष (इति कविसमयः)। कदाचित् आञ्जनेय इव हनूमानिव अक्षविनोदम् अक्षैर्द्यूतपाशकैर्विनोदं क्रीडाम् अन्वतिष्ठत् अकरोत्। आञ्जनेयस्तु अक्षस्य रावणसुतस्य विनोदं वधं चकार। कदाचिद् वानरेश्वरो वानरराजः

सुग्रीव इव बालिभ्रातेव वैदेहि नूनं महां धनं प्रयच्छ इति ब्रुवाणस्य इत्यभ्यर्थयमानस्य अलघु-काकुत्स्थस्य अलब्ध्यां महत्यां काकौ भिन्नकण्ठध्वनौ तिष्ठतीति तस्य अर्थिनो याचकस्य प्रार्थना याचना सफला क्रियतां फलवती विधीयताम् इति वा एवं वा नरपुंगवान् पुरुषश्रेष्ठान् आदिदेश आज्ञापयामास । सुग्रीवस्तु—वैदेहि सीतेति ब्रुवाणस्य अलघोर्महतः काकुत्स्थस्य रामस्य अर्थिनः प्रयोजनवतः प्रार्थना सफला क्रियतामिति वानरपुंगवान् कपिश्रेष्ठान् आदिदेश । श्लिष्टोपमालङ्कारः ।

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं कर्णपूरीचकार । कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चैः स्तननाभिरम्याः, कृतानिमेषनयनविभ्रमाः सकंदर्पाः सिषेवे वेलाविलासिनीः । कदाचिद्दशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्रोपेतो रममाणरामभरतप्रेक्षणेन क्षणमाह्लादमन्वभूत । एवमस्य सकलजीवलोकसुखसंतानमनुभवतो यान्ति दिनानि ।

कभी याचकों को प्रसन्न मन करके अपने (त्याग रूपी) गुण को (दूसरों के) कानों का भूषण बनाता था जैसे कामदेव फूलों को बाण बना (धनुष की) डोरी को अपने कान का भूषण बनाता है (अर्थात् कान तक खींचता है) । कभी उभरे हुए स्तनों तथा नाभि से रमणीय, निर्निमेष नेत्रों से लीलाएँ करने वाली, सकाम वार-वनिताओं का सेवन करता था, जैसे समुद्र उच्च शब्द से रमणीय मछलियों को अपने साथ ले जाने की क्रीडा करने वाली जल के दर्प (औद्धत्य) वाली शोभायमान ज्वारों (जलवृद्धियों) का सेवन करता है । कभी युद्ध द्वारा अपराजेय नगरी में स्थित हुआ शुभ मित्रों सहित स्त्रियों की क्रीडा वाले नाटक को देखकर क्षणभर आनन्द अनुभव करता था, जैसे दशरथ अयोध्यापुरी में रहता हुआ, सुमित्रा सहित, क्रीडा करते हुए राम भरत को देखकर आनन्द पाता था । इस प्रकार जीवलोक की सकल सुख-परम्परा का अनुभव करते हुए इसके दिन व्यतीत होते थे ।

कदाचिद् मकरकेतन इव कन्दर्प इव मार्गणान् याचकान् सुमनसो विधाय इष्टार्थसम्प्रदानेन प्रसन्नमनस्कान् कृत्वा स्वगुणं स्वकीयं त्यागाख्यं गुणं कर्णपूरीचकार सर्वेषां श्रोत्रावतंसीचकार । मकरकेतनस्तु—सुमनसः पुष्पाणि मार्गणान्

शरान् विधाय स्वगुणं निजमौर्वी कर्णपूरीचकार कणन्तिभाचकर्ष। कदाचिद् अम्भोनिधिरिव जलधिरिव उच्चः स्तनाभ्यां पयोधराभ्यां नाम्या च रम्या रमणीयाः, कृता विहिता अनिमेषाभ्यां निष्पलकाभ्यां नयनाभ्यां लोचनाभ्यां विभ्रमा विलासा याभिस्ताः, सकन्दर्पाः कन्दर्पेण कामेन सहिताः वेलाविलासिनी वारस्त्री, सिषेवे बुभुजे। अम्भोनिधिस्तु—उच्चैः स्तननेन गर्जनेन अभिरम्याः, कृतोऽनिमेषाणां मत्स्यानां नयनं स्थानान्तरप्रापणं यैस्तथोक्ता विभ्रमा विविधा आवर्ता यासु ताः, सकन्दर्पा कं जलं तस्य दर्पेण औद्धत्येन सहिताः विलसन्त्यमीक्ष्णमिति विलासिन्यस्ताः वेला अम्भोवृद्धीः सेवते। कदाचिद् दशरथ इव अयोध्यायां योद्धुमशक्यायां पुरि नगर्यां स्थितो विराजितः सुमित्रोपेतः शोभनसुहृद्भिः परिवृतः रममाणा विलसन्त्यो रामाः सुन्दर्यो यत्र तादृशस्य भरतस्य भरतनाट्यस्य प्रेक्षणे। दर्शनेन क्षणं क्षणकालं यावद् आह्लादमन्वभूत् सुखं प्राप। दशरथस्तु अयोध्यानाम्न्यां पुरि स्थितः, सुमित्रया लक्ष्मणमात्रा उपेतः रममाणः क्रीडन् यो रामो भरतश्च तयोः प्रेक्षणेनाह्लादमन्वभूत्। सर्वत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः। एवं यस्य नलस्य सकलः समस्तो जीवलोकस्य जगतो यः सुखसन्तानः आनन्दविस्तारस्तम् अनुभवतः प्राप्नुवतो दिनानि वासरा यान्ति व्यतीयन्ते।

वर्षा-वर्णनम्

अथ कदाचिदुन्नमत्पयोधरान्तरूपतद्धारावलीविराजिताः, कमलदलक्लान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रभ्रुवः, विद्युन्मणिमेखलालंकारधारिण्यः, शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः, प्रौढकरेणसंचारहारिण्यः कम्रकंधराः, तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलापोच्चमुखमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमानगुणमिममनुपमरूपलावण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिवावतरन्ति स्म वर्षाः।

इसके अनन्तर कभी समस्त जगत् से गुणगान किये जाने वाले, अनुपम रूप तथा लावण्य की राशि से राजित उस राजा का मानो दर्शन करने के लिए वर्षाएँ अवतीर्ण हुईं। वे उमड़ते बादलों में से गिरती हुई धारावली से सुशोभित थीं, [स्त्रीपक्ष में—उभरते पयोधरों के बीच में लटकती हुई हारावली से विभूषित] कमलपत्रों से अभीष्ट नयन वाली (अर्थात् कमलपत्र जिनके विषय में यह चाहते हैं कि ये चली जायें, क्योंकि वर्षा में कमलपत्र गल जाते हैं),

वलयाकार इन्द्रधनुष रूपी वक्र भौंहों से शोभित तथा विद्युत रूपी मणि मेखला-लंकार धारण करने वाली थीं, [स्त्रीपक्ष में—कमलपत्रों के तुल्य सुन्दर नयनों से युक्त, इन्द्रधनुश्चक्र जैसी वक्र भौंहों से शोभित तथा विद्युत सदृश मणिमय मेखलालकार धारण करने वाली]। रिमझिम शब्द करने वाली तथा कलहंसों को (मानसरोवर की ओर) भेजने वाली थीं, [स्त्रीपक्ष में—मधुर झंकारमय कलहंस (चरणाभूषण) वाली]। प्रचुर जल से धूल का संचार रोकने वाली थीं, [स्त्रीपक्ष में—प्रौढ़ हथिनी की चाल को हरने वाली]। कमनीय जलधरों से युक्त थीं, [स्त्रीपक्ष में—सुन्दर ग्रीवा वाली]। चन्द्रमा की कान्ति को आच्छादित कर देने वाली तथा वर्षा गीतों में (गायक-गायिकाओं के) मुखमण्डलों को (मेघदर्शन के लिए) ऊपर की ओर करने वाली थीं, [स्त्रीपक्ष में—चन्द्रमा के कान्तिकलाप को पराजित करने वाली तथा उत्कृष्ट मुखड़े वाली]।

अथ कदाचिद् उन्नमतामुद्गच्छतां पयोधराणां मेघानाम् अन्तराद् मध्यात् पतन्तीभिर्वर्षन्तीभिः धारावलीभिर्धाराश्रेणिभिः विराजिता शोभिताः, पक्षे—उन्नमतोरुद्गच्छतोः पयोधरयोः स्तनयोरन्तरे मध्ये पतन्ती लम्बमाना या हारावली मणिस्रक् तया विराजिताः, कमलदलानां पङ्कजपत्राणां कान्तमिष्टं नयनमतिवाहनं यासां ताः वर्षाणामतिवाहने कमलानामुल्लासत्वात्, पक्षे—कमलदलवत् पङ्कजपत्रवत् कान्ते रम्ये नयने नेत्रे यासां ताः, सुरचापचक्रमिन्द्रधनुर्वलयमेव चक्रं कुटिलं भ्रुवो यासां ताः, पक्षे—सुरचापचक्रवत् वक्रे भ्रुवौ, यासां ताः, विद्युतः सौदामिन्य एव मणिमेखलालङ्कारा रत्नकाञ्चीभूषणानि तद्धारिण्यः, पक्षे—विद्युत इव ये मणिमेखलालङ्कारास्तद्धारिण्यः, शिञ्जाना अव्यक्तशब्दं कुर्वाणाः, मुक्ता मानसरोवर प्रति प्रस्थापिताः कलहंसकाः कादम्बा याभिस्ताः, पक्षे—शिञ्जाने अव्यक्तशब्दं कुर्वाणे आमुक्ते धृते च कलहंसके चरणाभरणे यासां ताः, प्रौढेन विपुलेन केन जलेन रेणुसंचार धूलीनामुत्पतनं हरन्ति निवारयन्तीति तादृश्यः, पक्षे—प्रौढाया विशालायाः करेण्वा हस्तिन्याः संचार गति हरन्तीति ताः, कम्राः कमनीयाः कन्धरा जलधारा यासु ताः, पक्षे—कमनीयग्रीवाः, तिरस्कृता मेघावलीभिरवरुद्धाः शशाङ्ककान्तयश्चन्द्रिका यासु ताः कलापेषु वर्षागीतेषु उच्चानि ऊर्ध्वानि मुखमण्डलानि गायिकानां वदन-चक्रवालानि यासु ताश्च, पक्षे—तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलाप पराजितचन्द्र-

शोभासमूहम् उच्चमुत्कृष्टम् उन्नतकपोलं वा मुखमण्डलम् यासां ताः वर्षा वर्षर्तवः, सकलेन समस्तेन जगता लोकेन जेगीयमा नाः प्रशस्यमाना गुणा दया-दाक्षिण्यादयो यस्य तम इमम् अनुपमस्य लोकोत्तरस्य रूपस्य सौन्दर्यस्य लावण्यस्य कान्तेश्च राशिना पुञ्जेन राजितं शोभितं राजानं नृपम् अवलोकयि-तुमिव प्रत्यक्षीकर्तुमिव अवतरन्ति स्म आगच्छन्ति स्म। अत्र समानकार्य-लिङ्गविशेषणबलात् प्रस्तुतासु वर्षास्वप्रस्तुतानां नारीणां व्यवहारस्य समारो-पात् समासोक्तिः। उपमा रूपकं च तदङ्गम्। अवलोकयितुमिवेत्यत्र हेतूत्प्रेक्षा।

यत्र च।

आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटह जीमूतनूत्नध्वनिं
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम्।
उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता
हर्षेणेव समुच्छ्रिता वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान्॥४०॥

और उस समय, कामदेव के यौवराज्य का नगाड़ा बनी हुई तथा नाचते हुए मोरों के लिए गम्भीर मृदंग वाद्य का काम करती हुई मेघों की नवीन ध्वनि को सुनकर निकलते हुए नवीन हरे हरे शष्पांकुरों के बहाने रोमांचित भूमि मानो हर्ष से उल्लसित होकर शिलीन्ध्र पुष्परूपी ध्वजाओं को उठाए हुए थी।

यत्र च, नृत्यतो नर्तनं कुर्वतः केकिकुटुम्बकस्य मयूरमण्डलस्य मन्द्रां गम्भीरां मृदङ्गक्रियां मुरजव्यापारं दधतं धारयन्तं, स्मरयौवराज्य-पटहं स्मरस्य कन्दर्पस्य यौवराज्यपटहं युवराजत्वडिण्डिमभूतं जीमूत-नूत्न-ध्वनिं जीमूतानां मेघानां नूत्नध्वनिं नूतनगर्जितम् आकर्ण्य निशम्य उन्मीलन्ति प्रादुर्भवन्ति नवानि नूतनानि नीलानि हरितवर्णानि यानि कन्दलदलानि शष्पांकुरास्तेषां व्याजेन मिषेण रोमाञ्चिता पुलकिता, हर्षेणेव उल्लासेनेव समुच्छ्रिता परिपूर्णा वसुमती धरणिः शिलीन्ध्रध्वजान् शिलीन्ध्रपुष्परूपाः पताकाः दध्रे धृतवती। जीमूतध्वनौ पटहत्वारोपाद् रूपकम्। जीमूतध्वनौ मृदङ्गक्रिया न संभवतीत्य-संभवद्वस्तुसम्बन्धवर्णनाद् बिम्बप्रतिबिम्बभावे निदर्शना। दलव्याजेनेत्यपह्नुतिः। हर्षेणेवेत्युत्प्रेक्षा। शिलीन्ध्रेषु ध्वजत्वारोपाद् रूपकम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः
शृण्वन्तो मधुरं द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम् ।
शाखाग्रग्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजा-
स्तोषेणेव वहन्ति पुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः ॥४१॥

और, नवीन वर्षा-जल रूपी रस के प्राचुर्य को ग्रहण करने के लिए फैलाये हुए पत्र कर्णपुटों से गगनमण्डल में मिलती हुई मेघावली के गर्जन को सुनकर, शाखाओं पर सलग्न आकर मिलती हुई तथा सुगन्धातिशय के कारण ऊपर मंडराती हुई भ्रमर-पंक्ति रूप ध्वजा वाले धारा-कदम्ब (वर्षा में फूलने वाले कदम्ब वृक्ष) मानो सन्तोष से पुष्परूपी रोमाञ्च को धारण कर रहे थे ।

अपि च, नवरसो नूतनवृष्टिजलमेव नवरसो नूतनानन्दरतस्य प्राग्भारेण प्राचुर्येण निमित्तेन विस्फारितैर्विस्तारितैः कर्णपुटायितैः श्रोत्रपुटवदाचरद्भिः पर्णैः पत्रैः मधुरं सरसं, द्युमण्डले गगनचक्रवाले मिलन्ती संगच्छन्ती या मेघावली वारिवाहपङ्क्तिस्तस्या गर्जितं शब्दं शृण्वतः आकर्णयन्तः, शाखाग्रेषु विटपाग्रभागेषु ग्रथमाना मिलन्त्यः सौरभभरेण सुगन्धातिशयेन भ्रान्ता संचलिताश्च अलिपालयो भ्रमरपङ्क्तय एव ध्वजाः पताका येषां ते धाराकदम्बद्रुमाः वसन्ते ये पुष्यन्ति ते धूलीकदम्बा ये च वर्षासु ते धाराकदम्बाः — ते च ते द्रुमा वृक्षाः तोषेणेव प्रीत्येव पुष्पलकं कुसुमरोमाञ्चं वहन्ति धारयन्ति । पर्णेषु कर्णपुटत्वारोपाद् रूपकम् । तोषेणेवेत्युत्प्रेक्षा । पुष्पेषु पुलकत्वारोपाद् रूपकम् ।

अथ क्रमेण

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं भुवस्तलम् ।
जातं जातिलतापुष्पगन्धान्धमधुपं वनम् ॥४२॥

तदनन्तर क्रमशः जल कमल रहित भूतल धूलि रहित, और वन चमेली लता के फूलों की गन्ध से मस्त भ्रमरों वाला हो गया ।

अथ तदनन्तरं क्रमेण क्रमशः, नीरं वारि नीरजनिर्मुक्तम् अम्भोजरहितं, भुवस्तलं भू-पृष्ठ नीरजस्कं धूलिरहितं, वनं विपिनं च जातिलतानां मालतीवल्लीनां यानि पुष्पाणि प्रसूनानि तेषां गन्धेन सौरभेण अन्धा मत्ता मधुपा भ्रमरा यत्र तादृशं जातं भूतम् । अत्र छेकानुप्रासयमकतुल्ययोगितानां संकरः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

अपि च ।

धुतकदम्बकदम्बकनिष्पतन्नवपरागपरागममन्थराः ।
हृततुषारतुषाररतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः ४३॥

प्रकम्पित कदम्ब-समूह से गिरते हुये नवीन पराग के मिलन से मन्थर, तुषारकणों का आहरण करने वाले, रति रागियों के प्रियतम पर्वत पर्वत से बहने लगे ।

अपि च किं च, धुतानि कम्पितानि यानि कदम्बकदम्बकानि नीपतरुसमूहास्तेभ्यो निष्पततां निर्गच्छतां नवपरागाणां नूतनमकरन्दानां परागमेन सम्पर्केण मन्थरा मन्दाः, हृत तुषार तुषा हृता अपहृतास्तुषारस्य हिमस्य तुषा कणा यैस्ते, रतिरागिणां रतिरागवतां प्रियतमा अतिदयिता मरुतः समीरा मरुतः पर्वताद् ववुर्वान्ति स्म । मरु धन्वधराधरौ' इत्यमरः । कदम्ब-कदम्ब पराग-पराग, तुषार-तुषार, मरुतो-मरुतो इति यमकालंकारः । द्रुतविलम्वितं वृत्तम् ।

ततश्च तिरस्कृततरणित्विषि, विगलद्वारिविप्रुषि, शान्तचाकतृषि, निर्वाणवारणवपुषि, मानिनीमानग्रहग्रन्थिमुषि जनितजवासकशुषि, विधववधूविद्विषि, वर्धितमण्डूकहृषि मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राणपङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोषितकलहसवयसि, नष्टनक्षत्रमण्डलमहसि, मेचकितनभति, निष्पतन्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजः पुञ्जपिञ्जरिताष्टदिग्भामि भासुरसुरचापचक्रभृति, मयूरमदकृति, महिषशोषहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योतमानविद्युति, वहन्मन्दमेघंकरमरुति, हृष्यत्कृषाणयोषिति, पुष्प्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति, प्रोद्भूतभूरुहि, दरिद्रानद्राद्रुहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमदनाट्टहासायमानधननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्याम लितवनान्तररुचि रचितपान्थसार्थशुचि, श्रूयमाणमदमधुरमयूरवाचि, विनिद्रकोशातकीशालिनि, यूथिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि, पच्यमानजम्बूतरुवनराजभ्राजि, भिक्षाक्षणक्षपितपरिव्राजि, शान्तसारङ्गरुचि, नीडनिर्माणाकुलबलिभुजि, सान्द्रेन्द्रगोपयुजि, श्च्योतत्तमालधारागृहसहृशि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि श्रूयमाणरजनिशङ्काकुलचक्रवाकचक्रकुशि, शकटसंचारुधि, पल्लवितवीरुधि, विश्रान्तजिष्णु-

क्ष्मापालयुधि, क्षीणोक्षक्षुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणवीणबाहुच्छिदि, सिन्धुरोधोभिदि, दवदहननुदि, घिरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि तापिच्छच्छयानुच्छेदिनि, छन्नकुटीमध्यबध्यमानवाजिनि, विकसितबकुलवनविरानिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि जाते जगज्जीविनि जीमूतसमये कदाचिदम्भसि दिवसे मृगयावनपालकः प्रविश्य राजनं विज्ञापयामास।

और तब जिसमें सूर्य की दीप्ति तिरस्कृत हो गई है, पानी की बूंदे गिरने लगी, हैं चातकों की प्यास दूर हो गई है, हाथियों के शरीर तृप्त हो गये हैं, जो मानिनियों मानग्रह की ग्रन्थि को खोल देने वाला है, जिसने जवासे को सुखा दिया है, जो विधवा बधुओं का शत्रु है, जिसने मेंढकों का हर्ष वर्धित कर दिया है, जिसने चन्द्रमा को (मेघों में) बन्द कर दिया है, जिसमें कमलों के सरोवर म्लान हो गये हैं, जो स्वाधीनपतिकाओं को प्रियतर हैं, जिसमें कलहंस पक्षी (मानसरोवर को) प्रवास कर गये हैं, नक्षत्रमण्डल का तेज नष्ट हो गया है आकाश कृष्णवर्ण हो गया है, कदम्बों का पराग गिरने लगा है, प्रफुल्ल कुटज पुष्पों के पराग-पुञ्ज के आठों दिशाओं की आभा पिंगल-वर्ण हो गई है, इन्द्रधनुष का चक्र भासमान होने लगा है, जो मोरों में मद उत्पन्न करने वाला है, भैंसों का शोष दूर करने वाला है, जिसमें सरिताएं विस्तीर्ण हो गई हैं विद्युत् चमकने लगी है; मन्द-मन्द मेघोत्पादक वायु चलने लगी है, कृषक वनिताए आनन्द मनाने लगी हैं, फूलती हुई केतकी के गन्धपान से मधुकर मत्त होने लगे हैं, वृक्ष उग आये हैं, जो गरीबों की नींद लुप्त करने वाला है जिसमें ग्वाले गर्वित हो उठे हैं, भ्रमर कदम्ब की डालों पर लटकने लगे हैं जो मुदित कामदेव के अट्टहास के समान मेघनाद को करने वाला है, जिसने पकती हुई जामुनों से वनमध्य की कान्ति श्यामल कर दी है, पथिकों में (विरह-जनित) शोक उत्पन्न कर दिया है, जिसमें मोरों की मद से मधुर केका वाणी सुनाई देने लगी है, तोरियाँ फूल गई हैं, जूही का जाल बिछ गया है, नवमालिका की माला छा गई है, कोंपलें निकलने लगी हैं, पकते हुए जामुन के वृक्षों की वनराजि भ्राजमान होने लगी है, भिक्षा के क्षण संन्यासी खिन्न होने लगे हैं, हरिणों की रुजा शान्त हो गई है, कौए घोंसला बनाने के लिए आकुल होने लगे हैं वीरबहूटियाँ बहुत हो गई हैं, चूते हुए तमालवृक्ष फव्वारों के समान प्रतीत होने लगे हैं, दशों दिशाएं

श्याम हो गई हैं दिन में भी रात्रि की शंका से व्याकुल चकवा-चकवियों के विलाप सुनाई देने लगे हैं, शकटों का संचार रुक गया है. लताएँ पल्लवित हो गई हैं, विजयशील राजाओं के युद्ध विश्रान्त हो गये हैं, बैलों की भूख क्षीण हो गई है, बाणासुर की भुजाएँ काटने वाले विष्णु क्षीरसागर में सो गये हैं, नदियों के तट टूटने लगे हैं, दावानल शान्त हो गया है, विरहियों के मनों में व्यथा होने लगी है, लोगों के मनों में मोद होने लगा है, तमालवृक्षों की छाया घनी हो गयी है, घोड़े छाई हुई कुटी के अन्दर बांधे जाने लगे हैं, फूला हुआ बकुलवन शोभा पाने लगा है, ग्राम-सीमाए हल चलाने से विभक्त हो गई हैं, कामदेव विजय पाने लगा है, इस प्रकार के जगत् को जीवन देने वाले वर्षाकाल के आ जाने पर कभी पानी वाले दिन आखेटवन के रक्षक ने प्रविष्ट होकर राजा से निवेदन किया।

जीमूतसमय विशिनष्टि। ततश्च तिरस्कृता मन्दीकृतास्तरणेः सूर्यस्त-त्विषः कान्तयो येन तस्मिन्, विगलन्त्य पतन्त्यो वारीणां पयसां निप्रुषो विन्दवो यत्र तस्मिन् शान्ता अपगताश्चातकानां स्तोकानां तृषः पिपासा यत्र तस्मिन् निर्वाणानि प्रीतानि वारणानां गजानां वपूंषि शरीराणि यत्र तस्मिन्, मानिनीनां मानवतीनां मानग्रहस्य मानस्वीकारस्य ग्रन्थि दाढ्यं मुष्णात्यपहर-तीति तस्मिन्, जनिता कृता जवासकानां शुट् शोषो येन तस्मिन्, विधवानां मृतपतिकानां वधूनां स्त्रीणां विद्विषि शत्रुभूते वर्धिता वृद्धि नीता मण्डूकानां दर्दुराणां हृड् हर्षो येन तस्मिन् मुद्रितो मेघैराच्छादितश्चन्द्रमा हिमांशुर्येन तस्मिन् विद्राणानि म्लानानि पङ्कजसरांसि कमलसरोवरा यत्र तस्मिन्, स्वाधीनप्रियाणां आत्मवशीभूतपतिकानां प्रेयान् प्रियतरः तस्मिन्, प्रोषितानि कृतप्रवासानि मानसं प्रति गतानीत्यर्थः कलहंसवयांसि कादम्बपक्षिणो यत्र तस्मिन्, नष्टमपगतं नक्षत्रमण्डलस्य तारागणस्य महस्तेजो यत्र तस्मिन्, मेचकितं कृष्णीभूतं नभो गगनं यत्र तस्मिन्, निष्पतन्ति निर्गच्छन्ति नीपानां कदम्बतरूणां रजांसि मकरन्दा यत्र तस्मिन्, स्फुटानां विकसितानां कुटजानां कुटजकुसुमानां रजःपुञ्जेन परागपटलेन पिञ्जरिताः पिङ्गलीभूता या अष्टदिशोऽष्टौ ककुभस्ताभिर्भासते इति तस्मिन् भासुर कान्तिमत् सुरचापचक्रम् इन्द्रधनुर्वलयं बिभर्ति धारयतीति तस्मिन्, मयूराणां केकिनां मदकृति हर्षजनके, महिषाणां सैरिभाणां शोषं कार्श्यं हरतीति तस्मिन्

विस्तरन्त्यः प्रसरन्त्यः सरितो नद्यो यत्र तस्मिन्, विद्योतमाना भासमाना विद्युतस्तडितो यत्र तस्मिन्, वहन्तः संचरन्तो मेघकरा घनोत्पादका मरुतः समीरा यत्र तस्मिन्, हृष्यन्त्यः प्रसीदन्त्य कृषाणयोषितः कषकवनिता यत्र तस्मिन्, पुष्यन्तीनां विकसन्तीनां केतकीनां केतकीलतानां गन्धपानेन सौरभास्वादनेन मत्ता मदयुक्ता मधुकृतो भ्रमरा यत्र तस्मिन्, प्रोद्भूता उत्पन्ना भूरुहो वृक्षा यत्र तस्मिन्, दरिद्राणां निर्धनानां निद्रायै स्वापाय द्रुह्यति द्वेष्टीति तस्मिन् सगर्वा गर्वयुक्ता गोदुहो गोपाला यत्र तस्मिन्, कदम्बस्तम्बेषु नीपतरुगुल्मेषु आलम्बिनः आश्रिता मधुलिहो भ्रमरा यत्र तस्मिन्, मुदितस्य हृष्टस्य मदनस्य कामदेवस्य अट्टहासायमानः उच्चहासवदाचरन् यो घननादो मेघगर्जितं तं मुञ्चतीति तस्मिन्, पच्यमानैः परिपाकं प्राप्नुवद्भिः जम्बूफलै जाम्बवैः श्यामलिता मेचिकता वनान्तरस्य विपिनभागस्य रुक् कान्तिर्यत्र तस्मिन्, रचिता उत्पादिता पान्थसार्थस्य पथिकसमूहस्य शुक् कान्ताविरहजन्यशोको येन तस्मिन् श्रूयमाणा आकर्ण्यमाना मदेन हर्षेण मधुरा मधुर्ययुक्ता मयूराणां शिखिनां वाक् केकावाणी यत्र तस्मिन्, विनिद्रा विकसिता याः कोशातक्यः तोरीफलानि ताभिः शालते शोभते इति तस्मिन् यूथिकानां मागधीलतानां, जालमस्यास्तीति तस्मिन्, नवमालिकानां सप्तलालतानां माला पङ्क्तिरस्यास्तीति तस्मिन्, कन्दलानि नवपलाशाङ्कुरान् भजते इति तस्मिन्, पच्यमानानां परिपाकं प्राप्नुवतां जम्बूतरूणां जाम्बववृक्षाणां वनराजिभिः काननपङ्क्तिभिर्भ्राजते शोभते इति तस्मिन्, भिक्षाक्षणे भैक्ष्यावसरे क्षपिताः खेदिताः परिव्राजः संन्यासिनः येन तस्मिन्, शान्ता अपगता सारङ्गाणां हरिणानां रुग् रोगो यत्र तस्मिन्, नीडनिर्माणे कुलायरचने आकुला व्यग्रा बलिभुजो वायसा यत्र तस्मिन्, सान्द्राभिर्बहुलाभिः इन्द्रगोपाभिः शक्रगोपाभिः युज्यते युक्तो भवतीति तस्मिन्, श्च्योतन्तो वर्षन्तः तमालास्तापिच्छतरवः एव धारागृहसदृशो धारायन्त्रतुल्या यत्र तस्मिन्, श्यामायमानाः कृष्णायमाना दशदिशः ककुभो यत्र तस्मिन्, दिवापि दिवसेऽपि श्रूयमाणा आकर्ण्यमाना रजनिशङ्कया रात्रिभ्रमेण आकुलस्य भीतस्य चक्रवाकचक्रस्य रथांगसमूहस्य क्रुशो विलापा यत्र तस्मिन्, शकटानाम् अनसां संचारं गमनं रुणद्धि निवारयतीति तस्मिन्, पल्लविताः संजातकिसलया वीरुधो लता यत्र तस्मिन्, विश्रान्ता

अपगता जिष्णूनां जयशीलानां क्ष्मापालानां नृपाणां युधः संग्रामा यत्र तस्मिन्, क्षीणा न्यूनतां गता उक्ष्णां बलीवर्दानां क्षुद् बुभुक्षा यत्र तस्मिन्, क्षीरसमुद्रे दुग्धसागरे निद्राणः शयानो बाणबाहुच्छिद् बाणासुरभुजच्छेत्ता विष्णुर्यत्र तस्मिन् सिन्धूनां नदीनां रोधांसि कूलानि भिनत्ति विदारयतीति तस्मिन्, दवदहनं वनानलं नुदति अपगमयतीति तस्मिन्, विरहिणां वियोगिनां मनांसि चेतांसि तुदति व्यथयतीति तस्मिन्, जनिता रचिता जनानां मनुष्याणां मुत् प्रमोदो येन तस्मिन् तापिच्छानां तमालतरूणां छायाया अनातपस्य अनुच्छेदः सातत्यमत्रास्तीति तस्मिन्, छन्नानां रचितानां कुटीनां कुटीराणां मध्येऽभ्यन्तरे बध्यमानाः संयम्यमाना वाजिनो घोटका यत्र तस्मिन्, विकसितैः प्रफुल्लैः बकुलवनैः केसरसमूहैर्विराजते शोभते इति तस्मिन्, सीरेण लाङ्गलेन सीमन्तिता विभक्ता ग्रामसीमान आवसथसीमाप्रदेशा यत्र तस्मिन्, विजयमान उत्कर्षं लभमानो मनोजन्मा कन्दर्पो यत्र तस्मिन्, जगज्जीविनि जगद् लोकं जीवयति प्राणयतीति तस्मिन् जीमूतसमये वर्षाकाले जाते समागते सति कदाचिद् जातुचिद् अम्भसि दिवसे अम्मये वासरे मृगयावनपालकः आखेटारण्यरक्षकः प्रविश्य अन्तरागत्य राजानं नृपं नलं विज्ञापयामास निवेदितवान् ।

शूकरोत्पात-वर्णनम्

देव,

किं स्यादञ्जनपर्वतः स्फटिकयोर्द्वन्द्वं दधद्दीर्घयो-
रम्भोमेदुरमेघ एष किमुत श्लिष्यद्बलाकाद्वयः ।
शून्यः किं नु करेण कुञ्जर इति भ्रान्तिं समुत्पादयन्
दंष्ट्राद्वन्द्वकरालकालवदनः कोलः कुतोऽप्यागतः ॥४४॥

महाराज, क्या यह लम्बे-लम्बे दो स्फटिक पत्थर आगे निकाले हुए अंजन का पहाड़ है, अथवा क्या यह दो बलाका पक्षियों को साथ लिए जल से घना कृष्ण मेघ है, अथवा क्या यह सूंड से रहित हाथी है, ऐसा भ्रम (सन्देह) उत्पन्न करता हुआ दंष्ट्रा-युगल से भयंकर काले मुख वाला कोई शूकर कहीं से आ गया है ।

विशाल देह वाला काला शूकर है, जिसकी थूथनी में दो सफेद दाढ़ें

आगे निकली हुई हैं। कवि कहता है कि उसे देख लोगों को यह सन्देह होने लगता है कि कहीं यह काला अंजन का पहाड़ तो नहीं है। सफेद दाढ़ों को वे काले अंजन-पर्वत में निकले दो स्फटिक-पत्थर समझ लेते हैं। अथवा, कहीं यह जलपूर्ण काला मेघ ही तो नहीं है। सफेद दाढ़ों को वे मेघ के साथ विद्यमान सफेद बलाका पक्षी समझ लेते हैं। या, कहीं यह बिना सूंड का हाथी ही तो नहीं है। हाथी और इस शूकर में और तो सभी समानताएँ हैं—दोनों ही विशालकाय, कृष्णकाय तथा दाँत बाहर निकाले हुये हैं शूकर में केवल सूंड की कमी है। अतः बिना सूँड के हाथी का भ्रम हुआ।

देव, किमेषः अप्ययं दीर्घयोर्विशालयोः स्फटिकयोः श्वेतप्रस्तरयोर्द्वन्द्वं युगलं दधद् धारयन् अञ्जनपर्वतः स्यात् कज्जलगिरिर्भवेत् किमुत यद्वा किम् एषः अयं श्लिष्यद्बलाकाद्वयः श्लिष्यत् सगच्छमान बलाकाद्वयं बिसकण्ठिकायुगलं यत्र तादृशः अम्भोमेदुरमेघः अम्भसा सलिलेन मेदुरः स्थूलो मेघो घनः स्यात्, किं नु अथवा किं करेण शुण्डादण्डेन शून्यो रहित कुञ्जरो हस्ती स्यात्, इत्येवं भ्रान्ति भ्रमं सन्देहमित्यर्थः समुत्पादयन् जनयन, दंष्ट्राद्वन्द्वेन दन्तयुगलेन कराल भीषण काल कृष्णं वदनं मुखं यस्य तादृशः कोलः शूकरः कुतोऽपि कस्माच्चित् स्थानाद् आगतः समायातः शूकरेऽञ्जनपर्वतस्य, मेघस्य, शुण्डादण्डरहितकरिणञ्च सन्देहात् सन्देहालंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

ततश्चासो,

भिन्दन् कन्दकसेरुकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुवो
भञ्जन्नञ्जनशैलशृङ्गसदृशः फुल्लल्लतामण्डपान्।
मन्दं मन्दरलीलयाब्धिसदृशं मथ्नंश्च लालासरः
क्रोडः क्रीडति भाययन्निव भवत्कीडावने रक्षकान् ॥४५॥

कन्द, कसेरुओं तथा नवशष्पांकुरों से युक्त भूमि के स्निग्ध प्रदेशों को कुचलता हुआ, विकसित लतामण्डपों को तोड़ता हुआ, मन्दराचल की लीला से समुद्र की भांति लीला-सरोवर को मन्द-मन्द मथता हुआ, अंजन पर्वत के शिखर जैसा वह शूकर आपके क्रीडावन में रखवालों को भयभीत करता हुआ सा क्रीड़ा कर रहा है।

ततश्चासौ, कन्दान् कन्दफलानि कमेरून् कसेरुकान् कन्दलानि नवशष्पाङ्कुराश्च विभ्रतीति तान् भुवः स्निग्धप्रदेशान् भूमे रम्यस्थलानि भिन्दन् विदारयन्, फुल्लन्तीनां विकसन्तीनां लतानां वल्लरीणां मण्डपान् कुञ्जान् भञ्जन् त्रोटयन्, लीलासरः क्रीडासरोवरं मन्दरलीलया मन्दराचलक्रीडया अब्धिसदृशं समुद्रतुल्यं मन्दं शनैः शनैः मथ्नश्च आलोडयश्च, अञ्जनशैलस्य कज्जलगिरेः शृङ्गसदृशः शिखरतुल्यः क्रोडः शूकरो भवत्क्रीडावने भवदीयविहारविपिने रक्षकान् प्रहरिणो भाययन्निव पूर्वोक्तव्यापारैस्त्रासयन्निव क्रीडति क्रीडा करोति। अत्र शैलशृङ्गसदृशं इत्युपमा, मन्दरलीलयेति निदर्शना, भाययन्निवेत्युत्प्रेक्षा। तानि च स्वभावोक्तिरङ्गमिति संकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

मृगया-विहार-निश्चयः

राजा तु तदाकर्ण्य चिन्तितवान्—

'अच्छाच्छैः शुकपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना वनान्तास्तृणैः
सेव्याः संप्रति सान्द्रचन्द्रकिकुलैरुत्ताण्डवैर्मण्डिताः।
येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलपयः कल्लोलयन्तो मनाग्
वाता वान्ति विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः शनैः ॥४६॥
माद्यन्ति च तेषु संप्रति प्राथिनः तद्युज्यते विहर्तुम्'।

राजा यह सुनकर सोचने लगा—"शुकों के पंख-गुच्छों के समान हरे, रम्यातिरम्य शष्पों से आच्छन्न नृत्य करते हुए घने मयूर-कुलों से मण्डित वनप्रान्त इस समय सेवनीय हैं, जिनमें दूध के समान धवल सरोवर जल को कुछ-कुछ तरंगित करती हुई, विकसित केतकवन के स्कन्ध पर लोटती हुई वायुएं शनैः शनैः बह रही हैं।" और उनमें इस समय शूकर मतवाले हो रहे हैं। तो (शिकार के लिए) विहार करना ठीक है।

राजा तु नृपस्तु तदाकर्ण्य तच्छ्रुत्वा चिन्तितवान् व्यचारयत्—'अच्छाच्छैरतिशयनिर्मलैः शुकानां कीराणां पिच्छगुच्छवत् पक्षसमूहवद् हरितैर्हरितवर्णैः तृणैः शष्पैश्छन्ना व्याप्ताः, किं च उत्ताण्डवैर्नृत्यद्भिः सान्द्रचन्द्रकिकुलैः सान्द्राणां घनीभूय स्थितानां चन्द्रकिणां बर्हिणां कुलैः समूहैर्मण्डिताः शोभिता वनान्ता आरण्यप्रान्ताः सम्प्रति साम्प्रतं सेव्याः सेवनीयाः सन्ति, येषु वनान्तेषु क्षीर-

विपाण्डु दुग्धधवल पल्वलपयस्ताडागसलिलं मनाग् ईषत कल्लोलयन्तस्तरङ्ग-यन्तः, विनिद्राणां विकसितानां केतकवनानां केतकविपिनानां स्कन्धे पृष्ठे लुठन्तः संचरन्तो वाताः समीराः शनैर्मन्दं मन्दं वान्ति प्रवहन्ति । शुकपिच्छगुच्छहरितैः क्षीरविपाण्डु इति द्वयोरुपयोः संसृष्टिः अनुप्रासश्चालंकारः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

तेषु च वनान्तेषु सम्प्रति इदानीं प्रोथिनो घोणिनो माद्यन्ति मत्ता भवन्ति। तत् तस्मात् विहर्तुं मृगया विहारं कर्तुं युज्यते युक्तमस्ति ।"

इत्यवधार्यन्नाहूय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश —'भद्र द्रुतमनुष्ठीयताम्, सामदिश्यन्तां कृतवैरिविपत्तयः पत्तयः, पर्याण्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगा, सज्जीक्रियन्तां निजवेगनिर्जितमातरिश्वान श्वानः, समारोप्यन्तामपनीताहितायूंषि धनूंषि, गृह्यन्तां निर्मथित प्रोथियूथपाशाः पाशाः' इति ।

यह विचार कर उसने बाहुक नाम के सेनापति को बुलाकर आदेश दिया— "भद्र, शीघ्रता करो, वैरियों पर विपत्ति लाने वाले पदातियों को (प्रयाण की) आज्ञा दो, मन के समान वेगवान् घोड़ों पर काठी कस दो, अपने वेग से वायुओं को जीतने वाले (शिकारी) कुत्तों को तैयार कर लो, शत्रुओं की आयु को हरने वाले धनुषों पर डोरी चढ़ा लो, शूकर-राजों की आशाओं को धूल में मिलाने वाले पाशों को ले लो।"

इत्यवधारयन् निश्चिन्वन् बाहुकनामानं बाहुकाभिधानं सेनापतिं चमूनायकम् आहूयाकार्य आदिदेश आज्ञापयामास । भद्र हे भद्रक, द्रुतं शीघ्रं यम् अनुष्ठीयतां विधीयताम् । कृता विहिता वैरिणां शत्रूणां विपत्तिर्व्यसनं यैस्ते पत्तयः पदातयः समादिश्यन्ताम् आज्ञाप्यन्ताम्, मनस्तुरगाः मनोवद् मानसवत् तुरं त्वरितं गच्छन्तीति तादृशाः तुरगा अश्वाः पर्याण्यन्तां पल्ययनैर्योज्यन्ताम्, निजवेगेन स्वकीयजवेन निर्जिता विजिता मातरिश्वानो वयवो यैस्ते श्वानः सारमेयाः सज्जीक्रियन्ताम् सज्जिता विधीयन्ताम्, अपनीतानि नाशितानि अहितानां वैरिणाम् आयूंषि वयांसि यैस्तानि धनूंषि चापाः समारोप्यन्ताम् आरोपितमौर्वीकाणि क्रियन्ताम्, निर्मथिता उन्मूलिताः प्रोथियूथपानां वराह-राजानाम् आशा मनोरथा यैस्ते पाशा जलानि गृह्यन्ताम् आदित्यन्ताम् ।

मनस्तुरगा इत्युपमा। अनेकासु क्रियास्वेककारकसद्भावाद् दीपकम्। पत्तयः—पत्तयः, तुरगाः—तुरगाः, श्वानः श्वानः इत्यादि यमकम्।

अथ मौलिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाज्ञापयति देवः' इत्यभिधाय त्वरया तथा कृते सति स्वयमपि,

निर्मांसं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघु कर्णयोः
स्कन्धे बन्धुरमप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे।
पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जवे
राजा वाजिनमारुरोह सकलैर्युक्तं प्रशस्तैर्गुणैः॥४७॥

इसके बाद अंजलिबद्ध करकमल-युगल को मस्तक पर रखे हुये सेनापति ने "जैसी महाराज की आज्ञा" यह कह कर वैसा ही किया। तब स्वयं भी, राजा मुखमण्डल पर मांस रहित, मध्यभाग में कृश, कानों से लघु सुगठित कन्धे वाले, चौड़ी छाती वाले स्निग्ध रोमों वाले, पिछले पार्श्वों से स्थूल, विस्तीर्ण पृष्ठ वाले, वेग में प्रधान एवं सकल प्रशस्त गुणों से युक्त घोड़े पर सवार हो गया।

अथ तदनन्तरं, मौलौ मस्तके मिलत् संगच्छमानं मुकुलितं बद्धं करकमल-युगलं पाणिसरोरुहद्वन्द्वं यस्य तेन सेनापतिना सैन्याध्यक्षेण 'यदाज्ञापयति देवः यदादिशति महाराजः' इत्यभिधाय इत्युक्त्वा त्वरया सत्वरं तथा कृते सति तथैव विहिते सति—स्वयमपि, राजा नृपो नलः मुखमण्डले आननचक्रवाले निर्मांसम् आमिषरहितं, मध्ये मध्यभागे परिमितम् अल्पप्रमाणं, कर्णयोः श्रोत्रयोः लघु ह्रस्वं, स्कन्धे अंसे बन्धुरं सुघटितम् उरसि वक्षसि अप्रमाणं विशालं, रोमोद्गमे लोमोदये स्निग्ध चिक्कण, पश्चिमपार्श्वयोः पश्चाद्भागयोः पीनं स्थूल पृष्ठे पृष्ठप्रदेशे पृथुतरं विस्तृततरं, जवे वेगे प्रधानं मुख्यं, सकलैः समस्तैः प्रशस्तैः श्लाघ्यैर्गुणैर्युक्तं समन्वितं वाजिनं तुरंगमम् आरुरोह अधिष्ठितवान्। स्वभावोक्तिरलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

मृगया-वर्णनम्

आरुह्य च क्रमेण कार्दमिककर्पटावनद्धमूर्धजैर्दण्डखण्डपाणिभिः क्रूरकर्मोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनन्तैः कृतान्तदूतैरिव पाशहस्तैः

पापर्द्धिकैरनुगम्यमानः, दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसंपुटैरकाण्डो-ड्डीनप्राणैरिव वनप्राणिभिराकर्ण्यमानहर्षितहयहेषारव, पवनकम्पिततरु-शाखाग्रपल्लवव्याजेन दूरादेवोत्क्षिप्तहस्ताभिरुड्डीयमानशकुनिकुलकोला-हलच्छलेन भयान्निवार्यमाण इव वनदेवताभिः अभिमुखागतैरुन्मिषत्तरु-पुष्पप्रकरमकरन्दबिन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशशङ्कितैरर्घ्यमिवोपपादयद्भि-रुपरुध्यमान इव वनमारुतैः, उन्निद्रसान्द्रकुसुमकेसराङ्कुरजालजटिलाभि-र्भयादुद्गतरोमाञ्चप्रपञ्चाभिरिवोद्भ्रान्तभृङ्गरवगद्गदरुदितेन निषिध्य-मान इव वनवीरुद्भिः, उद्भिन्नभास्वदमन्दकन्दलावलोकनेनानन्द्यमानः श्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं तद्वनमाससाद ।

और सवार होकर प्रस्फुटित शोभायमान तीव्र कोपलों (या शिलीन्ध्र-पुष्प-श्रेणियों) के दर्शन से आनन्दित होता हुआ, शिकारी कुत्तों से अनुसृत, घोड़ों से अनुगत (विरोध पक्ष में— कुत्तों से अनुसृत होते हुये भी कुत्तों से नहीं अनुसृत) होकर, हाथियों से युक्त तथा पर्वत की तलहटी में विद्यमान (विरोध—हाथियों से युक्त हुये भी हाथियों रहित) उस वन में पहुँच गया। उसके पीछे-पीछे मैले कपड़े से केश बांधे डण्डे हाथ में लिए, क्रूर कर्म के उचित आकार वाले, मृगवन्धनी साथ लिए, यमराज के दूतों जैसे प्रतीत होने वाले, पाशपाणि अनन्त शिकारी थे। दूर से उसके हर्षित घोड़े का हिनहिनाहट का शब्द गर्दन उठाए हुए कर्ण संपुट ऊँचे किये हुए वन-प्राणियों से सुना जा रहा था, जो ऐसे लगते थे मानो अनवसर में उनके प्राण उड़ चले हों। वनदेवता वायु से कम्पित तरु-शाखाओं के पत्तों के बहाने दूर से ही हाथ उठा कर, उड़ते हुए पक्षियों के कोलाहल के छल से मानो भय के मारे उसे रोक रहे थे। सामने से आती हुई, खिलते हुए तरुपुष्पों की मकरन्द-बिन्दुओं को वर्षा उड़ाती हुई, वन के विनाश की शंका से मानो अर्घ्य चढ़ाती हुई वनवायुओं से वह घेरा जाता हुआ सा लग रहा था। विकसित घने कुसुमों के केसरांकुरों से परिपूर्ण, अतएव भय से रोमांचित सी वनलताएँ उद्भ्रान्त भ्रमरों के शब्द गद्गद रोदन से उसे मानो मना कर रही थीं।

आरुह्य च क्रमेण, कार्दमिकेन कृष्णवर्णेन (कर्दमेन रक्तमिति कार्दमिकं, 'लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक्' इति ठक् प्रत्यय) कर्पटेन वस्त्रेण अवनद्धाः

संयमिता मूर्धजाः शिरोरुहा यैस्तैः, दण्डखण्डो यष्टिका पाणौ करे येषां तैः, क्रूरकर्मोचितो नृशंसकार्ययोग्यः आकार आकृतिर्येषां तैः, वागुरावाहिभिः वागुरां मृगबन्धनीं रज्जुं (वागुरा मृगबन्धनीं इत्यमरः) वहन्ति धारयन्तीति तैः अनन्तैरसंख्यैः कृतान्तदूतैरिव यमराजसन्देशहरैरिव पाशहस्तैर्जलपाणिभिः पापर्द्धिकैर्मृगयालुभिः अनुगम्यमानोऽनुस्रियमाणः, दूरात् विप्रकृष्टस्थानादेव उन्नमितकन्धरैरुद्ग्रीवैः, तथा किं च ऊर्ध्वौ उद्गतौ कर्णसंपुटौ श्रोत्रचषकौ येषां तैः अकाण्डोड्डीनप्राणैरिव अकाण्डेऽनवसरे उड्डीना उत्पतिताः प्राणा असवो येषां तैरिव वनप्राणिभिररण्जीवधारिभिः आकर्ण्यमानः श्रूयमाणो हर्षितानां मुदितानां हयानां वाजिनां हेषारवो ह्रेषाध्वनिर्यस्य सः पवनेन समीरणेन कम्पिता आन्दोलिता ये तरुशाखाग्रपल्लवा विटपिविटपाग्र किसलयाः तेषां व्याजेन मिषेण दूरादेव दूरस्थानादेव उत्क्षिप्ता उन्नीताः करा हस्ता याभिस्ताभिर्वनदेवताभिः अरण्यदेवीभिः उड्डीयमानानाम् उत्पततां शकुनिकुलानां खगनिवहानां कोलाहलस्य कलकलस्य छलेन व्याजेन भयाद् त्रासात् निवार्यमाण इव निरुध्यमान इव, अभिमुखागतैः सम्मुखप्राप्तैः उन्मिषतां विकसतां तरुपुष्पप्रकराणां पादपप्रसूनः समूहानां ये मकरन्दबिन्दवः पुष्परसकणास्तेषां वर्षं वृष्टिं वहन्ति धारयन्तीति तैः, वनविनाशस्य अरिण्यध्वंसस्य शङ्का सन्देहः संजातो येषां तैः, अर्घ्यमिव पूजाद्रव्यमिव उपपादयद्भिरुपहरद्भिः वनमारुतैः विपिनवातैः उपरुध्यमान इव आव्रियमाण इव, उन्निद्राणाम् उद्गतानां सान्द्राणां घनानां कुसुमकेसराङ्कुराणां पुष्पकिञ्जल्कप्ररोहाणां जालेन समूहेन जटिलाभिः परिपूर्णाभिः, भयात् साध्वसाद उद्गतः उद्भूतः रोमाञ्चप्रपञ्चः पुलकसमूहो यासां ताभिरिव वनवीरुद्भिररण्यलताभिः उद्भ्रान्तानाम् उच्चलितानां भृङ्गाणां द्विरेफाणां रवः शब्द एव गद्गदरुदितम् अवरुद्धकण्ठविलपितं तेन निषिध्यमान इव निवार्यमाण इव, उद्भिन्नानि प्रस्फुटितानि भास्वन्ति प्रस्फुरन्ति अमन्दानि तीव्राणि यानि कन्दलानि नवशाखाङ्कुराः शिलीन्ध्रपुष्पाणि वा तेषां विलोकनेन दर्शनेन आनन्द्यमानः आह्लाद्यमानः, श्वानुगतोऽपि श्वभिः, सारमेयैः अनुगतः अनुसृतोऽपि अश्वानुगतः न श्वभिः सारमेयैरनुगतः इति विरोधः, अश्वैस्तुरंगमैरनुगतं इति परिहारः, सगजमपि गजैर्हस्तिभिः सहितमपि अगज हस्तिरहितमिति विरोधः, अगः पर्वतः तत्र जातमिति परिहारः, तद्वनम् तदरण्यम् आससाद प्राप्तवान्। श्वानुगतोऽपीत्यारभ्य विरोधाभासोऽलंकारः। अन्यत्र उत्प्रेक्षापह्नुतीत्यादिः।

ततश्च केचिदुद्यत्परश्वधा गणपतयः, केऽपि दृष्टसिंहिकासुतविक्रमाः शशधरा, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकदिक्पालाः, केऽपि हरिमार्गानुसारिणो बलभद्राः, केऽपि चक्रपाणयो मधुसूदनाः, केऽपि शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्नयो विप्रलोकाः, केऽपि खण्डिताञ्जनाधरप्रवालाः प्रभञ्जनाः, केऽप्युत्खातदन्तिदन्तमुष्टयो निस्त्रिंशाः तस्य पृथ्वीपतेराकुलितश्वापदाः पदातयो वनं रुरुधुः ।

तब उस राजा के पैदल शिकारियों ने वन्य जन्तुओं को व्याकुलित कर उस वन को घेर लिया । उनमें कुछ परशु उठाये साक्षात् गणपति (वस्तुतः—दौड़ने वाले उत्कृष्ट कुत्तों को साथ लिये गणनायक) थे । कुछ सिंहिकासुत राहु के विक्रम को देखे हुए साक्षात् चन्द्रमा (वस्तुतः— शेरनी के पुत्रों का विक्रम देखने वाले खरगोशधारी थे कुछ प्रतीची के दिक्पाल पाशपाणि वरुण (वस्तुतः—पाश हाथ में धारण कर गीदड़ों की राह देखने वाले) थे । कुछ कृष्ण के मार्ग का अनुसरण करने वाले बलभद्र (वस्तुतः सिंहों तथा मृगसमूहों का पीछा करने वाले और बल में भद्र थे । कुछ चक्रपाणि मधुसूदन (वस्तुतः—चक्र हाथ में लेकर छत्तों से शहद चुआने वाले) थे । कुछ शैव दर्शन को मानने वाले रुद्रानुयायी (वस्तुतः—गीदड़ियों के आने की प्रतीक्षा करने वाले रौद्ररूपधारी) थे । कुछ आहिताग्नि विप्रजन (वस्तुतः – अग्नि जला कर पक्षियों को देखने वाले) थे । कुछ अपनी प्रिया अंजना के अधरप्रवाल को खण्डित करने वाले प्रभंजन (वस्तुतः—अंजन वृक्ष के निचले पत्तों को खण्डित करने वाले भंजक) थे । कुछ उखाड़े हुए हाथी-दांत की मूठ वाले खड्ग (वस्तुतः—उखाड़े हाथीदांत मुट्ठी में लिये क्रूर लोग) थे ।

ततश्च तस्य पृथिवीपतेः राज्ञो नलस्य आकुलितश्वापदा उद्वेजितहिंस्रपशवः पदातयो पत्तयो वनं रुरुधुः । कीदृशाः पदातय इत्युच्यते । केचित् केऽपि उद्यत्-पर-श्व-धाः उद्यन्तः पलायमानाः परे उत्कृष्टाः श्वानो मृगयाकुशलाः सारमेयास्तान् दधति धारयन्तीति तादृशा गणपतयो दलनायकाः, पक्षे – उद्यत्परश्वधा उद्गृह्यमाणपरशवो गणपतयो हेरम्बाः । केऽपि केचन दृष्टसिंहिकासुतविक्रमाः दृष्टो वीक्षितः सिंहिकासुतानां केसरिकिशोरकाणां विक्रमः पराक्रमो यैस्तादृशाः

शशधराः शशान् शशंकान् धरन्ति मृगयार्थं गृह्णन्तीति ते, पक्षे—हृष्टः सिंहिका-सुतस्य राहोर्विक्रमो यैस्ते शशधराश्चन्द्रमसः। केऽपि पाशपाणयो जालहस्ताः जम्बुदिक्पालाः जम्बुकानां शृगालानां दिश काष्ठां पालयन्ति प्रतीक्षन्ते इति ते, पक्षे—जम्बुको वरुणस्तस्य दिश प्रतीचीं पालयन्ति रक्षन्तीति ते, पाशपाणयो वरुणाः। ('जम्बुकौ क्रोष्टुवरुणौ' इत्यमरः) केऽपि हरिमार्गानुसारिणः हरिं सिंह मार्गं मृगसमूहं च अनुसरन्ति अनुधावन्तीति ते बलभद्राः बलेन भद्रा शक्ताः, पक्षे—हरिमार्गानुसारिणः कृष्णमतानुयायिनो बलभद्रा बलदेवाः। केऽपि चक्रपाणयः चक्रं रथाङ्गं पाणौ करे येषां ते मधुसूदनाः मधु क्षौद्रं सूदयन्ति क्षारयन्तीति तादृशाः, पक्षे—चक्रपाणयः सुदर्शनचक्रहस्ता मधुसूदना मधुनामकदैत्यस्य संहारका विष्णवः। केऽपि शिवागमावर्तिनः शिवानां शृगालीनाम् आगमम् आगमनम् आवर्तन्ते प्रतीक्षन्ते इति ते रौद्रा भयंकराः, पक्षे—शिवागमावर्तिनः शिवशास्त्रानुयायिनो रौद्राः शैवाः केऽपि आहिताग्नयो गृहीतवह्नयः वि-प्रलोकाः वीन् शकुन्तान् प्रलोकयन्ति पश्यन्तीति ते, पक्षे—आहिताग्नयः साग्निहोत्राः विप्र-लोका ब्राह्मणजः केऽपि खण्डिताञ्जनाधर-प्रवालाः खण्डिताच्छिन्नाः अञ्जनानाम् अञ्जनवृक्षाणाम् अधरप्रवाला अधः पल्लवा यैस्ते प्रभञ्जनाः अकर्षेन भञ्जकाः, पक्षे—खण्डितो दष्टः अञ्जनायाः स्वप्रियायाः अधरपल्लवो निम्नोष्ठकिसलयो यैस्ते प्रभञ्जनाः वाताः। केऽपि उत्खातदन्तिमुष्टयः उत्खाता उच्छिन्ना 'दन्तिदन्ता' गजदशना मुष्टौ येषां ते निस्त्रिंशाः क्रूराः, पक्षे—उत्खातानां दन्तिदन्तानां मुष्टिः त्सरुर्येषु ते निस्त्रिंशाः खड्गा। अत्र केचित् पदातयो गणपतय एवेत्यादिविषयाध्यवसानादतिशयोक्तिः। विषयस्य पदातेरूपादानेऽप्यधः करणमात्रेणाध्यवसानमस्ति।

ततश्च तैः क्रियन्ते विकलभा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, ध्रियन्ते-ऽनेकधारयातिपातिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्ड-दण्डा गण्डकश्चः; निक्षिप्यन्ते परितः शराः शरभाश्च, भज्यन्ते तरवस्त-रक्षवश्च।

फिर वे वन निकुंजों का आभाहीन तथा हालियों को शाविकों से वियुक्त करने लगे। दुधार वार करने वाली तलवारों को तथा अनेक प्रकार से सवेग आक्रमण करने वाले तरुण गेंडों को पकड़ने लगे। शब्द करते हुए धनुर्दण्डों को

तथा छोटे गैंडों को खींचने लगे। चारों ओर बाणों को तथा शरभ मृगों को बखेरने लगे। तरुओं तथा चीतों का अंगभंग करने लगे।

ततश्च तैः पदातिभिर्वननिकुञ्जाः काननकुञ्जाः कुञ्जराश्च हरिस्तनश्च विकलभा विगतकान्तयो व्यपेतकरिशावकाश्च क्रियन्ते विधीयन्ते। अनेकधारया द्विधारत्वाद अनेकया धारया अतिपातिनः आक्रमितारः खड्गाः करवालाः अनेका बहुधा रयातिपातिनः रयेण वेगेन अतिपतन्ति आक्रामन्तीति तादृशाः खड्गिनश्च प्रौढगण्डकाश्च ध्रियन्ते गृह्यन्ते। कूजन्तः शब्दायमानाः कोदण्डदण्डा धनुर्यष्टयो गण्डकाश्च बालखड्गिनश्च कृष्यन्ते आकृष्यन्ते। परितः समन्ततः शरा इषवः शरभाश्च अष्टापदमृगाश्च विक्षिप्यन्ते विप्रकीर्यन्ते। तरवः शाखिनः तरक्षवश्च चित्रकाश्च भज्यन्ते त्रोटयन्ते। अत्र मृगयाप्रसङ्गे वननिकुञ्जकुञ्जरादीनामुभयेषां प्राप्नुतानां विकलकमत्त्वाद्येकधर्मसम्बन्धवर्णनात् श्लेषानुप्राणिता तुल्ययोगिताऽलंकारः।

क्षणेन च परन्ति पीवरा वराहाः, सीदन्ति दन्तिनः विरस रसन्ति सातङ्का रङ्कवः, प्रकाशल शैल भयादारोहन्ति रोहिताः, शरसंघातघूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंश्रय श्रयन्ते तरलितनेत्राश्चित्रकाः, त्वरिततरं तरन्तीवोत्पतन्तो नभसि निजजवनिर्जिततुरंगाः कुरङ्गाः।

और क्षण भर में ही स्थूलकाय शूकर गिरने लगे, हाथी खिन्न होने लगे, भयभीत मृग बेसुरा शब्द करने लगे रोहित मृग भय के मारे प्रकट इलायची लताओं वाले शैल पर चढ़ने लगे, बाण प्रहार से चक्कर खाये हुये भैंसे भूमि पर पड़ने लगे चंचल नेत्रों वाले चीते दुर्गम स्थान में शरण लेने लगे अपने वेग से घोड़ों को जीत लेने वाले हरिण सत्वर उछलते हुये आकाश में तैरने से लगे।

क्षणेन च सहसैव च पीवरा वराहाः स्थूला घोणिनः पतन्ति धराशायिनो भवन्ति, दन्तिनो गजाः सीदन्ति क्लिश्यन्ते, सातङ्का रङ्कवः त्रस्ता मृगाः विरसं रसन्ति कटुक शब्दायन्ते, रोहिता रोहितमृगाः भयात् त्रासात् प्रकाशाः स्पष्टा एला एलालता यत्र तं शैलं पर्वतम् आरोहन्ति आरूढा भवन्ति, शरसंघातघूर्णिताः शरसंघातेन बाणसमूहेन घूर्णिता व्याकुलिता महिषा लुलाया महीं यान्ति भूमौ पतन्ति, तरलितनेत्राः तरलिते चञ्चले नेत्रे लोचने येषां ते चित्रकास्तरक्षवो

दुर्गसंश्रय श्रयन्ते गिरिगुहादीनामाश्रय गृह्णन्ति, उत्पतन्त उत्प्लवमाना निजजव-निर्जित-तुरंगा निजजवेन स्ववेगेन निर्जिताः परास्ता तुरंगाः वाजिनो यैस्ते कुरङ्गा हरिणा नभसि गगने तरन्तीव तरणं कुर्वन्तीव। अत्र 'वरा-वरा, दन्ति-दन्ति' इत्यादौ यमकम्। 'तरन्तीव' इत्युत्प्रेक्षा।

तत्र त व्यतिकरे,

> जाताकस्मिकविस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः
> संत्रासोज्झितकर्णतालचलनान् दिग्दन्तिनः कम्पयन्।
> जन्तूनां जनितज्वरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभूद्
> येनेद स्फुटतीव निर्भरभृतं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम्॥४८॥

ऐसा घटित होने पर, 'यह क्या है' इस प्रकार अकस्मात् आश्चर्य में पड़े हुये देवों द्वारा सुना जाता हुआ, भय के कारण कर्णताल चलाना जिन्होंने छोड़ दिया है उन दिग्गजों को कपाता हुआ, जन्तुओं में ज्वर उत्पन्न करता हुआ कोई अनोखा शिकार का कोलाहल हुआ, जिससे अत्यधिक पूर्ण यह ब्रह्माण्ड-भाण्ड का उदर फटने सा लगा।

तत्र च व्यतिकरे तथा च घटिते—जातः उत्पन्नः आकस्मिकोऽकस्मादागतो विस्मयः आश्चर्यं येषां तैः सुरैर्देवैः किमिदम् इति किमेतदिति आकर्ण्यमानः श्रय-माणः, किं च संत्रासाद् भयाद् उज्झितं परित्यक्तं कर्णतालयोः श्रोत्रयोश्चलन संचारो यैस्तान् दिग्दिन्तिनो दिग्गजान् कम्पयन् चालयन् जन्तूनां प्राणिनां जनित-ज्वरः जनित उत्पादितो ज्वरः पीडा येन तादृशः कोऽपि अत्युत्कटः स मृगया-कोलाहलः असौ आखेटकलकलः अभूद् उदपद्यत्, येन कोलाहलेन निर्भरभृतम् अतिशयपरिपूर्णम् इदं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम् एतद् जगद्भाण्डजठर स्फुटतीव विदीर्यंत इव। अत्र स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षयोरङ्गाङ्गिभाव सकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

शूकर-वर्णनम्

राजाप्येकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्वतो विहारिहरिहरिणश-शकशम्बरवराहहननहेलया विचरन्नितस्ततस्तरुणतरतमालमञ्जरीजाल-नीलोदघुष्तिस्कन्धकेसरम् ऊर्ध्वस्तब्धकर्णसंपुटम्, अश्वचक्राय क्रुध्यन्तम्, आघूर्णितघ्राणम् अनवरतकृतघनघोरघर्घररवम्, उत्क्षिप्तपुच्छगुच्छम्, अभि-

मुखमेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि पङ्किलपल्वलप्रदेशे तं शूरशूकरमपरमिव दवदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत् ।

राजा ने भी एक-एक बाण के प्रहार से मस्त हाथियों को गिराकर चारों ओर विहार करने वाले सिंह, हरिण, खरगोश, शम्बर और शूकरों की वध-क्रीडा के साथ इतस्ततः विचरण करते हुए सामने एक अति घने नागर मोथे के गुच्छों से पूर्ण पंकिल जलाशय प्रदेश में उस शूर शूकर को देखा, मानो वह दूसरा दावाग्नि से दग्ध पहाड़ हो उसके कन्धे के केसर अतिपरिपक्व तमाल-मञ्जरियों के जाल से काले तथा ऊर्ध्वमुख हो रहे थे, कर्णसम्पुट ऊपर उठे हुए तथा निश्चल थे, वह घोड़ों पर क्रुद्ध हो रहा था, थूंथनी को इधर-उधर चला रहा था, निरन्तर बादल के समान घोर घर्घर शब्द कर रहा था, गुच्छाकार पूंछ को ऊपर उठाये था ।

राजाऽपि एकशरप्रहारेण अद्वितीयवाणाघातेन पातिता धराशायिनः कृता मत्तमातङ्गा मदोन्मत्तगजा येन सः, सवतः समन्ततो विहारिणः संचारिणो ये हरयः सिंहा हरिणा मृगाः शशका मृदुरोमाणः शम्बरा मृगविशेषा वराहाः कोलाश्च तेषां हननहेलया वधक्रीडया इतस्ततो विचरन् भ्रसन् तरुणतराणाम् अतिशयेन परिपक्वानां तमालमञ्जरीणां तापिच्छतरुवल्लरीणां जालेन समूहेन नीलाः कृष्णवर्णा उद्धुषिता ऊर्ध्वमुखाश्च स्कन्धकेसरा अंससटा यस्य तम्, ऊर्ध्वौ उद्‌गतौ स्तब्धौ निश्चलौ च कर्णसंपुटौ श्रोत्रपुटौ यस्य तम्, अश्वचक्राय घोटकसमूहाय क्रुध्यन्त कुप्यन्तम् [क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः अ० १.४.३७ इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी] आघूर्णितघोणम् आघूर्णिता प्रचलायिता घोणा नासिका यस्य तम्, अनवरतं निरन्तरं कृतो विहितो घनः सान्द्रः घोरो भयंकर घर्घरवो घर्घरशब्दो येन तम्, उत्क्षिप्तः ऊर्ध्वं नीतः पुच्छगुच्छो बालधिस्तबको येन तम्, अभिमुखं संमुखीनम् एकस्मिन् अतिसान्द्रा अतिशयघनीभूता ये भद्रमुस्तास्तम्बा मुस्ताफलगुच्छास्तान् भजति धारयतीति तस्मिन् पङ्किलपल्वलप्रदेशे कर्दमिततडागस्थले अपरम् इतरं दवदहनदग्धाद्रिमिव दावाग्निज्वलितपर्वमिव तं शूरशूकरं वीरवराहम् अद्राक्षीत् अपश्यत् । स्वभावोक्तिरलङ्कारः ।

शरवर्षणं द्वन्द्वयुद्धं च

दृष्ट्वा च रचितशरसन्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य तस्योपरि परिणद्धविविधपत्त्रैः पतत्त्रिभिरभ्यवर्षत् । तत्र व्यतिकरे,

किमश्वः पार्श्वेषु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः
शरान्मुञ्चन्नुच्चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा :
किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्यरसिको
न जानीमस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ।।४६।।

और देखते ही फुर्ती से शरसन्धान करके ऊपर विविध पत्रों वाले बाणों की वर्षा कर दी, जैसे राम ने रावण के ऊपर की थी, .

और उस समय, क्या पार्श्वभागों में कूदने में चतुर घोड़ा (उत्कृष्ट था), अथवा क्या अत्यधिक चंचल हाथ से खींचे धनुष द्वारा बाण छोड़ता हुआ राजा (उत्कृष्ट था), अथवा बाणों से अपने को बचाता हुआ शौर्यरसिक चंचल शूकर (उत्कृष्ट था), नहीं समझ पड़ता किसे अधिक उत्कृष्ट वर्णित किया जाये ।

दृष्ट्वा च रचितं कृतं शरसन्धानस्य वाणारोपणस्य लाघवं त्वरा येन सः, राघव इव राक्षसेश्वरस्य राम इव रावणस्य, तस्य शूरशूकरस्य उपरि परिणद्धानि वद्धानि विविधानि अनेकानि पत्राणि पक्षा येषु तैः पतत्रिभि शरैः अभ्यदर्षत् वृष्टिं चकार । तत्र च व्यतिकरे अथा च घटिते—किम् पार्श्वेषु पार्श्वभागेषु प्लवनचतुरः उत्कूर्दने निपुणः अश्वस्तुरंगमः, किं नु किं वा उच्चैरत्यधिकं चलतराभ्यां चञ्चलतराभ्यां कराभ्यां हस्ताभ्यामः, आकृष्टं यद् धनुः कोदण्ड तेन शरान् इषून् मुञ्चन् वर्षन् नृपतिः पार्थिवो नलः, किं किं वा परिहृतशरः परिहृताः निवारिताः शरा वाणा येन सः शौर्यरसिकोऽतिशयशूरः आलोलश्चञ्चलः कोलः शूकरः,—न जानीमो नो विद्मः, इह अस्मिन् नृपशूरः युद्धे तेषां कस्तेषु कतमः परम उत्कृष्टो वर्ण्यते कीर्त्यते इति । अत्र त्रयाणां कतमं उत्कृष्टं इति सन्देहात् सन्देहालंकारः । विशेषणानां साभिप्रायत्वाद् परिकरः । स च सन्देहस्याङ्गमिति सकरः । शिखरिणी वृत्तम् ।

अपि च ।

अजनि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं
किमपि चलितशैल द्वन्द्वयुद्ध तयोस्तत् ।

स्खलिततुरगवेगो विस्मयेनैष यस्मिन् ।
दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसाक्षी बभूव ॥५०॥

और, चरण-प्रहार से भूमण्डल में कम्प उत्पन्न कर देने वाला, शैलों को चलित कर देने वाला उन दोनों का वह अनोखा द्वन्द्वयुद्ध हुआ, जिसमें विस्मय से अपने घोड़ों के वेग को रोककर सूर्य भी शौर्य के आश्चर्य-कर्म का साक्षी बना ।

अपि च किं च, तयोर्नलशूकरयोः, जनितो रचितः पृथ्वीमण्डले भूतले उत्पादैः पादप्रहारैः कम्पः सचलनं येन तद्, चलितशैलं कम्पितपर्वतं किमप्य द्वितीयं तद् द्वन्द्वयुद्धं स युग्मसम्प्रहारः अजनि जातम्, यस्मिन् यत्र विस्मये-नाश्चर्येण स्खलितो मन्दीकृतस्तुरगाणां स्ववाजिनां वेगो जवो येन सः । दिनपतिरपि दिवाकरोऽपि शौर्याश्चर्यसाक्षी अद्भुतवीररसस्य साक्षाद् द्रष्टा बभूव जज्ञे । अत्र दिनपतेः स्खलिततुरगवेत्वासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धवर्णनादतिशयोक्तिः ।

शूकरजयो राज्ञो विश्रामश्च

अथ कथमपि नाथं प्रोथियूथस्य जित्वा
ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।
सुखमभजत राजा राजमानः श्रमाम्भः–
कणकलितकपोलालोलंलीलाकेन ॥५१॥

फिर शूकर-यूथ के नाथ उस विशाल शूकर को किसी प्रकार जीत कर ज्वरग्रस्त के समान अलसाया हुआ, स्वेदकणों से युक्त कपोलों पर लहराते हुए लीलामय केशों से शोभायमान राजा सालवृक्ष के नीचे आराम करने लगा ।

अथ तदनन्तरं कथमपि यथा कथञ्चिद् विशालं विस्तीर्णकायं प्रोथियूथस्य नाथं शूकरकुलस्य नायक जित्वा पराजित्य ज्वरितं इव संजातज्वर इव सालसः श्लथीभूतो राजा नृपो नलः सालमूले सर्जतरोरधस्तात् श्रमाम्भः कणैः श्रान्ति-जनितस्वेदजललवैः कलितौ युक्तौ यौ कपोलौ गण्डप्रदेशौ तयोर्लोलेन चञ्चलेन लीलालकेन सविलासचूर्णकुन्तलेन राजमानः शोभमानः सन् सुखम् अभजत आनन्दमसेवत । अत्र ज्वरित इवेत्युत्प्रेक्षा । 'राजा-राज, लालोललीलाल' इति छेकानुप्रासः । 'साल-लाल' इति यमकम् । थकारादीनामसकृदावृत्तौ वृत्त्यनुप्रासः । तेषां संसृष्टिः । मालिनी वृत्तम् ।

तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः कुसुमित-तरून्, तरलयन्तः शिखिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्तस्तनुलतापल्लवनि-वहान्, वहन्तो वहन्निर्भरजलशिशिरशीकरनिरान् करालयन्तः कुटजकुडम-लानि, मकरन्दबिन्दुमुचो मन्दमानन्दयामासुः कम्पितनीपवनाः पवनाः।

और वहाँ स्थित, थकावट के कारण बन्द नयनारविन्द वाले उसे पुष्पित तरुओं को हिलाती हुई, मयूरों के पिच्छ-मण्डलों को चंचल करती हुई छोटी-छोटी लताओं के पत्तों को नचाती हुई, वहते हुए झरनों के जलों के शीतल-कणों को वहन करती हुई कुटज वृक्ष की कलियों को विकसाती हुई, मर-करन्द-बिन्दु बरसाने वाली, कदम्ब के वनों को कम्पित करने वाली वायुयें मन्द-मन्द सुख देने लगीं।

तत्र च सालमूले स्थितं निषण्णं, श्रमेण श्रान्त्या मुकुलिते निमीलिते नयनार-विन्दे लोचनकमले यस्य तं नृपं, कुसुमिततरून् पुष्पितपादपान् आन्दोलयन्तः सञ्चालयन्तः, शिखिनां मयूराणां शिखण्डमण्डलानि बर्हचक्राणि तरलयन्तश्चञ्च-लीकुर्वन्तः, तनुलतानां लघुवल्लरीणां पल्लवनिवहान् पलाशसमूहान् ताण्डवयन्तो नर्तयन्तः, वहतां प्रस्यन्दमानानां निर्झरजलानां झरवारीणां शिशिरान् शीतलान् शीकरनिकरान् कणसमूहान् वहन्तो धारयन्तः, कुटजकुसुमलानि कुटजकुसुमकलिकाः करालयन्तः आन्दोलयन्तः, मकरन्दबिन्दुमुचः परागकणवर्षिणः, कम्पितानि चालि-तानि नीपवनानि कदम्बकानि यैस्तादृशाः पवना वाताः मन्दं शनैः शनैः आनन्द-यामासुः सुखयामासुः। अत्र एकेषामेव पवनानामनेकक्रिया सम्बन्धवर्णनाद् दीप-कालङ्कारः।

अनन्तरमनवरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलकरिकुर-ङ्गकण्डीरवकिशोरदृषत्पृष्ठधाविते परितः, परिजने, जनितविधिमृगवधू-वधव्याधीन् व्याधान् निवारयितुमिवान्तरान्तरा प्रसारितकरे मध्यस्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंवर्धितमृगविनाशशोकभरादिव वनवीरुधां पतत्सु पुष्पलोचनेभ्यो वाष्पेष्विव मध्याह्नोष्णविलीनमकरन्दबिन्दुषु, श्रूय-माणेषु वनदेवतानां वनविमर्दोपालम्भेष्विव तरुखण्डीड्डीनविविधविहङ्ग-विरुतेषु, विघट्टिताभंककुरङ्गकुटुम्बिनीकरुणकूजितव्याजेनान्यायमिव घूत-

कुर्वतीषु वनराजिषु इतस्ततः संचरच्चटुलतरतुरङ्गखुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलाद् वनविनाशवार्तां गगनचरेभ्यः कथयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलम् अकृतपरित्राणे च मूर्छित इव पुनः पुनः पतति भुवि भवनपारावतपतत्रिपत्रधूसरे धूलिपटले, सकम्पकपिकलापोल्ललनलुलितरुतरुणमञ्जरीपुञ्जनिकुञ्जाद् उद्व्रजिते मञ्जु गुञ्जति वनान्तरमपरमुच्चलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले, चङ्क्रमणक्रमेण च संपन्ने सैन्यस्य श्रमावसरे तस्यैव सरलसरलशालद्रुमस्याधस्सान्निषण्णे श्रमभाजि राजनि ।

तदनन्तर सेवकजन चारों ओर निरन्तर भयंकर कौओं व कुत्तों को अपना ग्रास बनाने के लिए आकुल शूकरों के और हाथियों, हरिणों व श्रेष्ठ केसरि-किशोरों के पीछे दौड़ने लगे। रश्मिमाली विविध मृगवधुओं के अन्दर पतिवध के सन्ताप को उत्पन्न करने वाले व्याधों को मानो रोकने के लिए किरण रूपी हाथ फैला कर मध्यस्थता करने लगा (पक्षान्तर में—आकाश-मध्य में स्थित हुआ)। वनलताओं के पुष्परूपी लोचनों से, मानो साथ बढ़े हुए मृगों के विनाश के शोकभार के कारण, मध्याह्न की गर्मी से पिघले हुए अश्रुतुल्य मकरन्द-बिन्दु गिरने लगे। तरु-समूहों से उड़ते हुए विविध पक्षियों के शब्द सुनाई देने लगे, मानो वन-देवता वन-विनाश का उपालम्भ दे रहे हों। जिनके शिशु मार डाले गये हैं ऐसी हरिणियों के करुण कूजितों के बहाने वनराजिया मानो अन्याय की शिकायत करने लगी। इतस्ततः विचरते हुए अतिशय चचल घोड़ों के खुरशिखाग्रों से खोदे हुए भूमण्डल से भवन के कबूतर पक्षियों के पंखों के समान धूसर धूलिपटल मानों आकाशचारियों को वन-विनाश का समाचार कहने के लिए अम्बरतल में उड़ा किन्तु वहाँ परित्राण न पाकर मूच्छित के समान पुनः पुनः भूमि पर ही गिरने लगा। सकम्प वानरकुलों के उछलने से जिनके तरुओं के परिपक्व मंजरीपुञ्ज झड़ गये हैं, ऐसे निकुंजों से मंजु गुंजार करते हुए चंचल भ्रमर समूह दूसरे वन-प्रदेश को चल पड़ें। सेना भी उछलते-कूदते थक गई। राजा थका हुआ उसी सरस सरस शालवृक्ष के नीचे बैठा था।

अनन्तरम्, अनवरतं सततं करालानि भयंकराणि यानि काककोलेयककुलानि वायस-सारमेय-समूहाः ('कौलेयकः सारमेयः—इत्यमरः) स्तेषां कवलनाय भक्ष-

णाय आकुलिता व्याकुला ये कोला वराहाः करिणो मातङ्गाः कुरङ्गा हरिणाः कण्ठीरवकिशोरदृषदः सिंहशावकमूर्धन्याश्च तेषां पृष्ठे पश्चाद् धाविते पलायिते परितः सर्वतः परिजने आखेटकसमूहे, जनितः उत्पादितो विविधमृगाणाम् अनेककुरङ्गाणां वधूवधेन कलत्रसंधारेय व्याधिर्यथा यैस्तान् व्याधान् लुब्धकान् निवारयितुमिव निषेद्धुमिव अन्तरा अन्तरा मध्ये मध्ये प्रसारितकरे विस्तारितकिरणे विस्तारिहस्ते च गनस्तिमालिनि रश्मिमालिनि सूर्ये मध्यस्थतां गतवति गगनमध्यं माध्यस्थ्यं च भजति सति (अत्रोत्प्रेक्षालंकारः) सहसंवर्धितानां सार्धं पोषितानां मृगाणां पशूनां विनाशेन वधेन यः शोकभरो दुःखभारस्तस्मादिव वनवीरुधां काननलतानां पुष्पलोचनेभ्यः कुसुमनेत्रेभ्यो वाष्पष्विव अश्रुष्विव मध्याह्नोष्णेन मध्याह्नधर्मेण विलीनाश्च्युता ये मकरन्दविन्दवः परागकणास्तेषु पतत्सु अधस्तादागच्छत्सु (अत्रोत्प्रेक्षोपमयोः संकरः), वनदेवतानाम् अरण्यदेवीनां वनविमर्दन काननध्वंसेन ये उपालम्भाः सोपालम्भवचनानि तेस्विव तरुखण्डेभ्यः पादपसमूहेभ्यः उड्डीनानाम् उत्पतितानां विविधविहङ्गानाम् अनेकविधपक्षिणां विरुतेषु कलकलेषु श्रूयमाणेष्वाकर्ण्यमानेषु (अत्रोत्प्रेक्षालंकारः), विघट्टिताभंका विनाषितशिशुका या कुरङ्गकुटम्बियो मृगयस्तासां करुणकूजितस्य करुणोत्पादकरुदितस्य व्याजेन मिषेण वनराजिषु विपिनङ्क्तिषु अन्यायमिव अत्याचारमिव पूत्कुर्वतीषु प्रकटयन्तीषु (अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षा), इतस्ततः संचरन्तो विहरन्तश्चटुलतरा अतिशयेन चञ्चला ये तुरङ्गा अश्वास्तेषां खुरशिखरशिखाभिः शफशिखराग्रभागैः उत्खातम् उत्पाटितं यद् धरणिमण्डलं भूतलं तस्माद् वनविनाशस्य काननध्वंसस्य वार्ता समाचारं गगनचरेभ्यः आकाशविहारिभ्यः कथयितुमिव वक्तुमिव अम्बरतलं गगनतलम् उत्पतिते उद्गते, अकृतपरित्राणे च अप्रदत्तशरणे च मूर्छिते इव मोहं गते इव पुनः पुनर्भूयो भूयः भुवि भूमौ पतति आगच्छति सति भवनस्य गृहस्य पारावतपतत्त्रिणां कपोतपक्षिणां पत्रवत् पक्षवद् धूसरे धूमिलवर्णे धूलिपटले रजः समूहे (अत्रोत्प्रेक्षोपमानां संकरः) सकम्पः कम्पयुक्तो यः कपिकलापो वानरसमूहस्तस्य उल्ललनेन उत्प्लवनेन लुलिताः खण्डितास्तरुणां वृक्षाणां तरुमञ्जरीपुञ्जाः परिपक्ववल्लरीसमूहा यस्मिन् तादृशो यो निकुञ्जो लतामण्डपस्तस्माद् उद्वेजिते व्याकुलिते मञ्जु

गुञ्जति रम्यं शब्दायमाने, अपर वनान्तरम् इतरं विपिनभागम् 'उच्चलिते उड्डीय गतवति चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले चपलषट्पदसमूहे, चङ्क्रमणक्रमेण च पर्यटनपरिपाट्या च सम्पन्ने जाते सैनयस्य सेनायाः श्रमावसरे श्रान्तिक्रमे, तस्यैव सरसः सजलः सरलः अवक्रश्च यः शालद्रुमः सर्जतरुस्तस्य अधस्ताद् नीचैर्निषण्णे उपविष्टे सति श्रमभाजि राजनि श्रान्ते नृप।

पथिकस्यागमनम्

अकस्मात्कुतोऽपि,

> वल्लीवल्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधद्दण्डकं
> ग्रीवालम्बितमृन्मणिः परिकुथत्कौपीनवासाः कृशः।
> एकः कोऽपि पटच्चरं चरणयोर्बद्ध्वाऽध्वगः श्रान्तवा-
> नायातः क्रमुकत्वचा विरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन् ॥५२॥

इतने में ही अकस्मात् कहीं से, लता-वल्कल से धूसर सिर को बांधे, कन्धे पर लाठी रखे, गर्दन में मिट्टी का तावीज लटकाये, जुड़े हुए वस्त्रखण्डों का लंगोट पहने, पैरों में फटा पुराना कपड़ा लपेटे, सुपारी की छाल से रचित भिक्षापुटी को उठाये हुये एक कोई कृश श्रान्त पथिक आया।

अकस्मात् सहसैव कुतोऽपि, वल्लीवल्केन लतावल्केन पिनद्धं बद्धं धूसरं मलिनं शिरो मूर्धा येन सः, स्कन्धे अंसे दण्डकं दधत् लगुडकं धारयन्, ग्रीवायां कण्ठे आलम्बितो धृतो मृन्मणिः मृत्तिकाविकारो मणिर्येन सः, परिकुथद् जीर्णं कौपीनमधोवस्त्रमेव वासः परिधानं यस्य सः, कृशो दुर्बलकायः, पटच्चरं जीर्णवस्त्रखण्डं ('पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्' इत्यमरः) चरणयोर्बद्ध्वा पादयोरुद्वेष्ट्य श्रान्तवान् श्रान्तः एकः कोऽपि कश्चन् अध्वगः पथिकः क्रमुकत्वचा पूगद्रुमवल्कलेन विरचितां निर्मितां भिक्षापुटीं भैक्षपात्रम् उद्वहन् धारयन् आयातः समागतः। स्वभावोक्तिरलंकारः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

आगत्य च राजानमवलोक्य सविस्मयमेष चिन्तयांचकार।

> 'अब्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीषवा
> नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम्।
> पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं
> तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधेः कोऽप्येष भर्ता भुवः ॥५३॥

तदेवंविधाः खलु महनीया महानुभावा भवन्ति' इत्येवमवधार्य समुपसृत्य 'स्वस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्, इत्यवादीत्।

और आकर वह राजा को देखकर विस्मय के साथ सोचने लगा—नेत्र-युगल कमल-श्री समान सुन्दर हैं, सिर पर बड़ी सी पगड़ी है, भ्रू मध्य के रोमों से युक्त मुख पूर्ण चन्द्र की शोभा को धारण कर रहा है, हस्ततल में पद्म है और गले में शंख के सदृश तीन रेखाएँ हैं, और जैसा इसका तेज है उससे प्रतीत होता है कि यह कोई समुद्रसहित भूमि का स्वामी है। 'तो इस प्रकार के महानुभाव श्लाघनीय होते हैं' ऐसा विचार कर, समीप जाकर 'अपनी कान्ति से कामदेव को जीत लेने वाले आपका कल्याण हो' यह कहा।

आगत्य च समेत्य च राजानं नृपं नलमवलोक्य वीक्ष्य सविस्मयं साश्चर्यम् एषोऽयमध्वगश्चिन्तयाञ्चकार विचारयामास। अब्जश्रीवद् अम्भोजकान्तिवत् सुभगं सुन्दरं नेत्रयुगलमस्ति, मौलिर्मस्तकं महोष्णीषवान् विशालशिरोवेष्टनयुक्तो विद्यते ऊर्णारोमसखम् ऊर्णा भ्रूमध्ये शुभरोमावर्तस्तद्रोमसखं तल्लोमयुक्तम् मुखं च वदनं च पूर्णस्य षोडशकलान्वितस्य शशिनः सुधांशोः श्रिय धत्ते शोभां धारयति ('ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्ते चान्तरा भ्रुवोः' इत्यमरः), पाणितले करतले पद्मं कमलचह्नमस्ति, गले च कण्ठे च शङ्खस्य सदृशं कम्बोस्तुल्यं रेखात्रयं लेखात्रितयं वर्तते, अस्य पुरो दृश्यमानस्य जनस्य तजोऽपि कान्तिरपि यथा येन प्रकारेण विद्यते तथा तेन प्रकारेण एष कोऽपि अयं कश्चन सजलधेः ससागराया भुवो भूमेः भर्ता राजा प्रतीयते। अत्रोपमानिदर्शनानुमानालङ्कारा-णामङ्गाङ्गिभावसंकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

'तदेवंविधा इत्थं प्रकारकाः खलु महनीयाः श्लाघनीया महानुभावा महाशया भवन्ति' इत्येवमवधार्य निश्चित्य समुपसृत्य समुपेत्य स्वस्ति मङ्गलं स्वकान्त्या निजसौन्दर्येण निर्जितः परास्तो मकरध्वजो मन्मथो येन तस्मै तुभ्यम् 'इत्यवादी-दवोचत्।

राज्ञः कुतूहलम्

राचापि सविस्मयमना मनागुन्नमितमस्तकः स्वागतप्रश्नेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुतः? प्रष्टव्योऽसि, क्व च कियच्चाद्यापि गन्तव्यम्। उपविश। विश्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वां किंवदन्तीम्। अनेकदेशदृश्वानः

किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति । न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वल्पा प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम् । अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छतामपह्नुवते । तदेहि । मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुभवावः' इत्येनमवादीत् ।

राजा भी विस्मित-मन हो, मस्तक को कुछ उठा, स्वागत प्रश्न से अभिनन्दन कर इसे बोला—"तीर्थयात्रिक, कहाँ से आपने दर्शन दिये हैं और कहाँ तथा कितना अभी जाना है ? बैठिये, विश्राम करके कोई अपूर्व वार्ता कहिए । अनेक देश-वासियों ने कई आश्चर्य की बातें देखी होती हैं । आकस्मिक दर्शन है, पहला कोई परिचय नहीं है, स्वल्प प्रीति है, इनमें से एक भी आशंका नहीं करनी चाहिये । पहले न देखी हों तो भी जो जाति से मणि हैं वे अपनी स्वच्छता को छिपाती नहीं । तो आइये, मुहूर्त-भर इकट्ठे मिलकर गोष्ठी सुख का अनुभव करते हैं ।"

राजापि नृपतिरपि सविस्मयमनाश्चर्यितचित्तो मनागीषद् उन्नमितमस्तकः उत्थापित मूर्धा स्वागतप्रश्नेन शुभागमनपृच्छया अभिनन्द्य सत्कृत्य 'तीर्थयात्रिक-पुण्यक्षेत्रपर्यटकः, त्वं कुतः कस्मात् स्थानादागतोऽसि, प्रष्टव्योऽसि ज्ञातव्योऽसि यत् क्व च कुत्र च, कियच्च किंपरिमाणं च अद्यापि सम्प्रत्यपि गन्तव्यं यातव्यम् । उपविश निषीद । विश्रम्य विश्राम विधाय कथय श्रावय कांचिदपूर्वाम् आश्चर्यमयीं किंवदन्तीं वार्ताम् अनेकदेशदृश्वानो बहुस्थानदर्शिनः [दृशेः क्वनिप अ० ३. २. ९४ इति दृशेः कर्मण्युपपदे क्वनिप् प्रत्ययः] किल आश्चर्यदर्शिनः अद्भुतवस्तुद्रष्टारो भवन्ति । न च आकस्मिकमकस्माज्जातं दर्शनं साक्षात्कारः, अपूर्वो नूतनः परिचयः संस्तवः, स्वल्पा प्रभूतेतरा प्रीतिः प्रणयः इत्येकमति आशङ्कनीय शङ्कितव्यम् । अपूर्वदर्शऽपि प्रथमसाक्षात्कारेऽपि न जात्या सामान्यधर्मेण मणयो रत्नानि स्वच्छतां नैर्मल्यम् अपह्नुवते प्रच्छादयन्ति । तत् तस्माद् एहि आगच्छ, मुहूर्तं क्षणम् एकत्र एकस्मिन् स्थाने गोष्ठीसुखं वार्ताप्रमोदम् अनुभवावः आस्वादयावः' इत्येवंप्रकारम् एनमध्वगम् अवादीद् जगाद ।

विदर्भ-वर्णनम्

असावपि 'अपूर्वकौतुककथाकर्णनरसिक, श्रूयतां यद्येव इत्यभिधाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत ।

'अस्ति स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याग्रणी-
र्देशो दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः।
यस्मिंस्त्यागमहोत्सवव्यसनिभिर्धन्यैरशून्या जनै-
रुद्देशाः स्पृहणीयभावभरिताः कं नोत्सुकं कुर्वते ॥५४॥

उसने भी 'हे अपूर्व कौतुक कथा सुनने के रसिक, यदि ऐसा है तो सुनिये' यह कह कर आराम से बैठे हुए इसके समीप स्वयं बैठकर कहना आरम्भ किया—"सब लोगों की सेवनीय वस्तुओं की गणना में अग्रगण्य, स्वर्गसम, दक्षिण दिशा रूपी नायिका के मुख का तिलक, स्त्री-पुरुष रूप रत्नों की खान विदर्भ देश है, जिसमें त्याग-महोत्सव के व्यसनी, धन्य जनों से समन्वित, स्पृहणीय भावों से भरे प्रदेश किसे उत्सुक नहीं कर देते हैं।"

असावपि सोऽपि 'अपूर्वायाः नूतनायाः कौतककथाया कुतूहलजनकवार्ताया आकर्णने श्रवणे रसिक रसग्राहिन्, श्रूयतामाकर्ण्यतां यद्येवम्' इत्यभिधाय इत्युक्त्वा सुखेनाक्लेशेन उपविष्टस्य नलस्य समीपे पार्श्वे स्वयमुपविश्य संनिषद्य कथयितुमारभत व्याहर्तुमारेभे। स्वर्गसमो देवलोकतुल्यः, समस्तजगतां निःशेषलोकानां सेव्यत्वसंख्याग्रहणीः सेव्यतागणनायां प्रथमः दक्षिणदिङ्मुखस्य दक्षिणाशावदनस्य तिलकः स्थासकः, स्त्रीपुंसरत्नानां नरनारीरूपमणीनाम् आकरः खनिः देशोऽस्ति विदर्भदेशो विद्यते [स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ 'अचतुर'—इत्यादिना अच् प्रत्ययान्तो निपात्यते, यस्मिन् यत्र त्यागो दानमेव महोत्सवो हर्षसमारोहस्तत्र व्यसनिभिरासक्तिमद्भिः धन्यैर्जनैः महाभाग्यवद्भिर्मनुजैः अशून्या युक्ताः, स्पृहणीयैर्मनोहरैः भावैर्वस्तुभिः भरिताः हृरिपूर्णाः उद्देशा प्रदेशा कम् उत्सुक न कुर्वते सोत्क न विदधति। अत्र स्वर्गसम इत्युपमा, दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः इति रूपकद्वयम्। सर्वानेवोत्सुकान् कुर्वते इत्यर्थत आपाद्यमानतयाऽर्थापत्तिः। शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्।

कथं चासौ न प्रशस्यते, यत्र त्रिपुरपुरन्ध्रिलोध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचिचक्रचकोरचुम्बितचरणनखचन्द्ररुचिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्यतयाऽपहसितकैलासश्रीः श्रीशैलः शूलपाणिना।

और वह देश प्रशंसा का पात्र क्यों न हो, जहाँ त्रिपुरासुर की स्त्रियों के लोध्र-तिलक को हरने वाले, विष्णु तथा ब्रह्मा की चूड़ामणियों के किरण-समूह रूपी चकोरों से चुम्बित-नख चन्द्रों के कान्ति कलाप वाले भगवान् त्रिशूलपाणि शिवजी सेव्यता से कैलास की श्री को भी तिरस्कृत करने वाले श्री-पर्वत का सेवन करते हैं।

कथं चासौ स विदर्भदेशो न प्रशस्यते न स्तूयते। यत्र त्रिपुरस्य पुरन्ध्रीणां नारीणां रोध्रतिलकं लोध्रस्थासकं हरतीति तेन, हरिर्विष्णुः विरञ्चिर्ब्रह्मा तयोश्चूडामणिमरीचिचक्राणि मूर्धरत्नरश्मिसमूहा एव चकोराश्चकोरपक्षिणस्तैः चुम्बितः आस्वादितः चरणनखचेन्द्ररुचिनिचयः पादनखेन्दुकान्तिसमूहो यस्य तेन, भगवता श्रीमताशूल पाणिना शिवेन सेव्यतया भोग्यतया अपहसिता पराजिता कैलासश्रीः कैलासशोभा येन स श्रीशैलस्तन्नामा पर्वतः सेव्यते आश्रीयते अत्र। मरिचिचक्रे चकोरत्वारोपाद् नखे च चन्द्रत्वारोपाद् रूपकम्। अपहसित-कैलाश श्रीरिति व्यतिरेकः।

यत्र च विकचविविधवनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदलव्यजनवीज्यमाननिधुवनविनोदखेदविद्राणनिद्रालुद्र विडमिथुनसनाथपरिसराः सरसघननिचुलतलचलच्चकोर चक्रवाककुलकपिञ्जलमयूरहारीतहारण्यो नाकलोककमनीयतां कलयन्ति कलमकेदारसाराः सरससहकारकारस्कराः कावेरीतीरभूमयः।

और जहाँ धान की क्यारियों से शार युक्त, सरस आम्र तथा किपाक तरुओं वाली कावेरी-तट की भूमियाँ स्वर्गलोक की कमनीयता को धारण करती हैं। उन भूमियों के प्रदेश विकसित वनों में विहार करने से सुगन्धित वायु द्वारा आन्दोलित कदली-पत्रों से पंखा झले जाते हुये, सुरतविनोद के खेद से श्रान्त निद्रालु द्रविड़ स्त्री-पुरुषों से सनाथ रहते हैं। वे भूमियाँ सरस घने निचुल वृक्षों के नीचे फुदकते हुए चकोर, चक्रवाक, कपिंजल, मोर तथा हारीत पक्षियों से मन को हरती हैं।

यत्र च विकचानि विकसितानी यानि विविधवनानि बहुविधविपिनानि तेषु विहारेण संचरणेन सुरभिः सुगन्धियः समीरणः पवनस्तेन आनन्दोलितानि

संचालितानि कदलीदलानि रम्भापत्राण्येव व्यजनानि तालवृन्तकानि तैर्वीज्यमानानि कृतवातानि निधुवनविनोदखेदेन सुरतश्रमेण विद्राणानि ग्लानानी अतएव निद्रालूनि शयालूनि यानि द्रविड़मिथुनानि द्रविड़द्वन्द्वानि तैः सनाथा युक्ताः परिसराः प्रान्ता यासु ताः सरसा सजला घना निविडा ये निचला हिज्जलवृक्षास्तेषां तले अधोभूमौ चलद्भिः विहरद्भिः चकोरैश्चकोरपक्षिभिः चक्रवाककुलैः कोकसमूहैः कपिञ्जलैस्तित्तिरिभिः मयूरैः केकिभिः हारीतैर्हारीतपक्षिभिश्च हारिण्यो मनोहराः, भलमकेदारसारा धान्यक्षेत्रै रम्याः, सरसा रमणीयाः सहकारा रसालतरवः कारस्कराः किंपाकद्रुमाश्च यत्र ताः कावेरीतीरभूमयः कावेरीतटभुवो नाकलोककमनीयतां स्वर्गलोकमनोहारितां कलयन्ति धारयन्ति। कथमन्यस्य कमनीयतामन्यो वहतीति सादृश्येपर्यवसानान्निदर्शना।

किं बहुना—

> अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये श्रीदक्षिणस्यै दिशे
> स्वर्गस्पर्धिसमृद्धये हृदयहृद्गोदावरीरोधसे।
> यत्र त्रस्तकुरङ्गकार्भकदृशः संभोगलीलाभुवः
> सौख्यस्यायतनं भवन्तिः रसिकाः कंदर्पशस्त्रं स्त्रियः ॥५५॥

बहुत क्या, समस्त रत्नों की निधि श्री दक्षिण-दिशा का मंगल हो, जिसकी समृद्धि स्वर्ग से स्पर्धा करती है, जिसका गोदावरी का तट हृदयहारी है और जहाँ त्रस्त हरिणशिशु के से नेत्रों वाली संभोग-लीला-स्थली, सुख की आयतनभूत, कामदेव की शस्त्रभूत स्त्रियाँ होती हैं।

किं बहुना किमधिकेन, स्वर्गस्पर्द्धिसमृद्धये स्वर्गस्पर्द्धिनी नाकलोकातिशायिनी समृद्धिः सम्पद् यस्यास्तस्यै' हृदयहृत चिताकर्षक गोदावरीरोधो गोदावरीतटं यत्र तस्यै, समस्तरत्ननिधये अशेषमणिनिधानभूतायै श्रीदक्षिणस्यै दिशे श्रीमत्यै दक्षिणाशायै स्वस्त्यस्तु शुभ भवतु, यत्र यस्यां दिशि त्रस्तानां भीतानां कुरङ्गकार्भकाणां मृगशावकानामिव दृशो नयनानि यासां ताः, संभोगलीलाभुवो विलासक्रीड़ास्थानानि, सौख्यस्यायतनं सुखस्य सदनं कन्दर्पशस्त्रं मनोजस्यायुधं रसिका रसविशारदाः स्त्रियो रमण्यो भवन्ति जायन्ते। अत्रोपमारूपकोल्लेखानां संकरः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

तत्र प्रणतसुरासुरशिरःशोणमरीचिचयवहलकुङ्कुमानुलेपपल्लवित-पादारविन्दद्वयस्य क्रौञ्चभिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि । तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेकस्मिन्नध्वरोधिनि न्यग्रोधपादपतले दीर्घाध्वश्रान्तेन विश्राम्यता मया श्रूयतां यदाश्चर्यमालोकितम् ।

वहाँ प्रणाम-परायण सुरों तथा असुरों के सिरों से निःसृत लाल-लाल किरण समूह रूपी गाढ़ कुंकुमानुलेपन से जिनके चरणारविन्द युगल पल्लवित हैं, उन क्रौञ्च भेत्ता, सुरभित गन्धमादन पर्वत के वासी भगवान् स्कन्ददेव (कार्तिकेय) के दर्शनार्थ यहाँ से मैं गया था और वहाँ से लौटते हुए लम्बे रास्ते के कारण थके हुए मैंने कहीं मार्ग में उगे एक वट-वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए जो आश्चर्य की बात देखी वह सुनिये ।

तत्र विदर्भदेशे, प्रणता नम्रा ये सुरासुरा देवदैत्यास्तेषां शिरस्सु मूर्धसु ये शोणमरीचिचया रक्तकिरणनिवहास्त एव वहलकुङ्कुमाः प्रचुरकेसरास्तेषामनुलेपेन चर्चया पल्लवितं किसलयितं पादारविन्दद्वयं चरणकमलयुगलं यस्य तस्य, क्रौञ्चभिदः क्रौञ्चदारणस्य भगवतः श्रीमतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः सुरभितगन्धमादनपर्वतकृतवसतेः स्कन्ददेवस्य कार्तिकेयस्य दर्शनार्थम् साक्षात्करणार्थम् इतोऽस्मात् स्थानाद् गतवानस्मि यातोऽस्मि । तस्माच्च ततश्च निवर्तमानेन प्रत्यागच्छता क्वचित् कुत्रचिद्, एकस्मिन् अध्वरोधिनि मार्गोत्पन्ने न्यग्रोधपादपतले वटतरोरधस्ताद्, दीर्घाध्वश्रान्तेन सुदीर्घमार्गोल्लङ्घनजनितश्रमेण विश्राम्यता विश्रान्ति लभमानेन मया, श्रूयतां कर्णगोचरीक्रियतां यदाश्चर्यमद्भुतत्वम् आलोकितम् वीक्षितम् । अत्र मरीचिच ये कुङ्कुमत्वारोपाद् रूपकम्, पादारविन्देत्युपमा । तयो संकरः ।

राजपुत्रीवृत्तवर्णनम्

अतिललितपदविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धमधिरूढा, प्रौढसखीसहायप्राया, प्रान्तपतच्चारुचामरमरुन्नर्तितालकवल्लरी, कर्णकुवलयालंकारधारिणी, रुचिररुचिमच्चरणनूपुरा, पुरःसरसरागगान्धर्विककण्ठकन्दरविनिःसरत्सरसंगीतपेङ्खोलनप्रयोगेषु दत्तावधाना, नेत्रे मनाङ्मीलयन्ती,

ध्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला मण्डलितमदनचापचक्रवक्रभ्रूः, भूपालपुत्रिका कापि क्वापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिश्रियत्।

अति ललित चरण-विक्षेप करने वाली उत्तम हथिनी के कन्धे पर सवार, प्रायः प्रौढ़ सखियों से युक्त पार्श्वों में डुलाई जाती हुई सुन्दर चामरों की वायु से लहराती हुई केशलता वाली, कानों में नील कमलरूपी अलङ्कार पहने कान्तियुक्त चरणों में रुचिर नूपुर धारण किये, आगे चलते हुए रागी संगीतज्ञों के कण्ठ-गुहा से निकलते हुए सरस गीतों के आरोहावरोह प्रयोगों में ध्यान दिये; नेत्रों को कुछ-कुछ मीचती हुई मोरपंखों का छत्रमण्डल लगाये, वक्रीकृत कामदेव के धनुष के समान कुटिल भौंहों वाली किसी राजपुत्रिका ने, जो कहीं से कहीं को चली थी, उस वट–वृक्ष के छायामण्डप में आकर आश्रय लिया।

अतिललिता अतिशयरम्याः पदविन्यासाश्चरणचक्रका एव सारो यस्यास्तादृशी या साधु-सिन्धुरवधूः प्रशस्तगन्धगजवशा तस्याः स्कन्धम् पृष्ठदेशम् अधिरूढां कृतारोहा, प्रौढाः स्थविराः सख्यः आलयः सहायाः सहायिका प्रायेण यस्याः सा, प्रान्तयोः पार्श्वयोः पतती वीज्यमाने ये चारुचामरे रम्यबालव्यजने तयोर्मरुता समीरेण नर्तिता नृत्यं कारिता अलकवल्लरी केशलता यस्याः सा, कर्णयोः श्रोत्रयोः कुवलयं नीलोत्पलमेवालङ्कारो भूषणं तद्धारिणी, रुचिरौ रम्यौ रुचिमतोः कान्तियुक्तयोश्चरणयो पादयोर्नूपुरौ मञ्जीरौ यस्याः सा, पुरःसरा अग्रगामिनः सरागा रागयुक्ता ये गान्धर्विका गायकास्तेषां कण्ठकन्दराद् गलविलाद विनिः सरन्ति निष्क्राम्यन्ति यानि सरसगीतानि मधुरगानानि तेषां प्रेङ्खोलनप्रयोगेषु आरोहावरोहेषु दत्तावधाना प्रदत्तध्याना, नेत्रे चक्षुषी मनागीषद् मीलयन्ती, निमेषयन्ती, ध्रियमाणं धार्यमाणं मयूरं मयूरपिच्छनिर्मितम् आतपत्रमण्डलं छत्रचक्रवालं यस्याः सा, मण्डलितं चक्रीकृत यद् मदनचापचक्रं कन्दर्पकोदण्डवलयं तदवद् वक्रे कुटिले भ्रुवौ यस्याः सा [उपमालङ्कारः] कापि काचित् कुतोऽप्युच्चलिता कस्माच्चित् स्थानात् प्रस्थिता भूपालपुत्रिका राजतनया, तदेव न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपं वटतरुच्छायावितानम् अशिश्रियत् अभजत।

तां चालोक्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः
किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुररिपोर्देवस्य वक्षस्थलात्
कोपात्पत्युरुतावतारमकरोद् देवी भवानी भुवि ।
श्यामाम्भोजसदृशपक्ष्मलचलन्नेत्रामिमां पश्यतो
धातस्तात करोषि किं न वदने चक्षुःसहस्रं मम ॥५६॥

और उसे देखकर विस्मित मन वाला मैं सोचने लगा—"क्या स्वयं लक्ष्मी ही विष्णुदेव के वक्षस्थल से आ गई है, अथवा देवी पार्वती ने ही पति के क्रोध के कारण भूमि पर अवतार ले लिया है ? इस नीलकमल के सदृश पलक-युक्त चंचल नेत्रों वाली को देखते हुए मेरे मुख पर हे तात विधाता, तू सहस्र नैत्र क्यों नहीं कर देता" ?

तां चालोक्य वीक्ष्य विस्मितमनाश्चकितचित्तः चिन्तितवानस्मि ध्यात्वानस्मि । किं देवस्य भगवतो मुररिपोर्विष्णोः वक्षस्थलादुरः स्थानात् स्वयं साक्षाल्लक्ष्मीः श्रीरेव आगता समायाता । उत अथवा पत्युर्भर्तुः शिवस्य कोपात् क्रोधाद्धेतोर्देवी भवानी पार्वती भुवि भूमौ अवतारमकरोद् जन्म लेभे । हे तात पूज्य धातः विरञ्चे, श्यामाम्भोजसदृशे नीलोत्पलतुल्ये पक्ष्मले पक्ष्मयुक्ते चलती चञ्चले नेत्रे चक्षुषी यस्यास्तामिमां पुरो दृश्यमानां कन्यकां पश्यतोऽवलोकयतो मम वदने मन्मुखे, चक्षु सहस्रं लोचनसहस्रं किं न करोषि कुतो न विधत्से । अत्र सन्देहोपमयोर्मिथोऽनपेक्षतया स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

अपि च—

इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे
कालिन्द्याः कुन्तलाली तुलयति विभवं भव्यभङ्गैस्तरङ्गैः ।
तस्याः किं श्लाघ्यतेऽन्यत्सुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वेव यस्याः
पुष्पेषोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनश्रीः ॥५७॥

और, मुख चन्द्रमा के सौन्दर्य को धारण कर रहा है, नेत्रपत्र कमल से स्पर्धा करने वाले हैं, केश-राशि अपनी भव्य भंगों वाली तरंगों से यमुना के वैभव को तोल रही है । उसकी अन्य किस वस्तु की प्रशंसा की जाये, जो

सुन्दर गुणों की निधिभूत है और जिसकी कामदेव की पताका रूप, युवक जनों को उन्मत्त कर देने वाली कोई अपूर्व यौवन-श्री जय पा रही है।

अपि च, आस्यं मुखम् इन्दोः सुधांशो सौन्दर्यं रम्यत्व कलयति धारयति। नेत्रपत्रे चक्षूर्दले कमलस्पर्धिनी अम्भोजातिशायिनि! कुन्तलाली केशराशिः भव्या रम्या भङ्गा भङ्गयो येषां तैस्तरङ्गैर्लहरीभिः कालिन्द्या यमुनाया विभवं विभूतिं तुलयति लघूकरोति। तस्या अन्यदिरत् किं श्लाघ्यते प्रशस्यते, सुभग-गुणनिधेः सुरम्यगुणगणागारभूताया यस्याः, पुष्पेषोः कुसुमशरस्य वैजयन्ती पताकाभूता, युवजनोन्मादिनी तरुणजनानामुन्मादयित्री यौवनश्रीस्तारुण्यशोभा जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। अत्र पूर्वार्धे निदर्शनाद्वय, यौवनश्रियां वैजयन्त्यारोपाद् रूपकम्। तेषां संसृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तम्।

अपि च—

आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वयः
सा कान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः।
एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो
यस्य स्यादुरगप्रभोरिव मुखे जिह्वासहस्रद्वयम ॥५८॥

और वह मनोहर आकार, वह महिमा, वह वैभव, वह आयु, वह कान्ति और वह विश्व को विस्मित करने वाला सौभाग्य का भाग्योदय, एक-एक के विशेष वर्णन-व्यापार में वही समर्थ है, जिसकी मुख में शेषनाग के समान, दो सहस्र जिह्वायें हो जायें।

अपि च किं च, स मनोहरो रम्यः आकार आकृतिः, स महिमा माहात्म्यं, तद् वैभवं विभूतिः, तद् वय आयुः सा कान्तिः शोभा, स च विश्वविस्मयकरः सर्वाश्चर्यकृत् सौभाग्यभाग्योदयः सौभाग्य सौन्दर्यमेव भाग्यं भागधेयं तस्य उदय आविर्भावः। तस्याः कन्यकाया एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ विशेषप्रशंसनकर्मणि स एव क्षमः समर्थः यस्य मुखे वक्त्रे उरगप्रभोरिव शेषाहेरिव जिह्वासहस्रद्वयं रसनासहस्रद्वयी स्याद् भवेत्। यस्य मुखे जिह्वासहस्रद्वयं स्यात् स एव तद्वर्णने क्षमो भवेदिति संभावनालङ्कारः। उरगप्रभोरिवेत्युपमा तयोश्च संकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तथार्धपथमिलितं कंचिदुदीचीनमध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमादरेण पृच्छन्ती मुहूर्तमिव तत्रैव विश्रमितुमारभत । श्रुतश्चायं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्यचिदुदीच्यनरपतेः श्लाघ्यमानकथावशेषालापः ।

वह भी, जैसे आप इस समय मुझसे यहाँ पूछ रहे हैं वैसे ही, आधे रास्ते में मिले हुए किसी उत्तर-दिशावासी पथिक से, जो दक्षिण दिशा को चला था, आदरपूर्वक पूछती हुई मुहूर्त-भर के लिये वहीं विश्राम करने लगी । मैंने भी उस राजपुत्री के सम्मुख उस पथिक से कहा हुआ किसी उत्तरदेशवासी राजा की शलाघ्यमान कथा का (निम्न) अवशिष्ट वार्तालाप सुना ।

सापि राजपुत्रिका यथा त्वमिदानीं साम्प्रतं मामिह पृच्छसि ज्ञाप्ससि, तथा अर्धपथेऽर्धमार्गे मिलितं प्राप्तं कंचिद् उदीचीनमुदीच्यम् अध्वगं पान्थं दक्षिणस्यां दिशि ककुभि प्रस्थितं कृतप्रयाणम् आदरेण सम्मानपूर्वकं पृच्छन्ती अनुयुञ्जाना मुहूर्तमिव स्वल्पकाल यावत् तत्रैव विश्रमितुं श्रममपनेतुमारभत प्रारेभे । श्रुतश्च श्रुतिगोचरीकृतश्च मयापि तेन पथिकेन तस्या राजपुत्र्याः पुरः समक्षं कस्यचिदज्ञातस्य उदीच्यनरपतेरुत्तरदेशवासीनृपस्य श्लाघ्यमानकथायाः प्रशस्यमानवार्ताया अवशेषालापोऽवशिष्टसंलापः ।

तस्मिन् स्मितमुखे यूनि यूपदीर्घभुजद्वये ।
ते धन्या न्यपतन् येषां कंदर्पसदृशे दृशः ॥५६॥

उस मुस्कराते मुख वाले, यज्ञस्तम्भ के समान दीर्घ भुजयुगल वाले, कामदेव के सदृश युवक पर जिनके नेत्र पड़े, वे धन्य हैं ।

तस्मिन् स्मितमुखे स्मितमीषद्धास्यं मुखे वदने यस्य तादृशे, यूपदीर्घभुजद्वये यूपवद् यज्ञस्तम्भवद् दीर्घं विशालतरं भुजद्वयं बाहुयुगलं यस्य तादृशे, कन्दर्पसदृशे मनोजतुल्ये यूनि तरुणे, येषां दृशो नेत्राणि न्यपतन् व्याप्रियन्त ते धन्या भाग्यशालिनः । अत्र द्वयोरूपमयोः संकरः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

किं बहुना—

सा त्वं मन्मथमञ्जरी स च युवा भृङ्गस्तवैवोचितः
श्लाघ्यं तद्भवतोः किमन्यदपरं किं त्वेतदाशास्महे ।

भाग्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः
श्रेयानस्तु विधेर्विचित्ररचनासंकल्पशिल्पश्रमः ॥६०॥

बहुत क्या, वह तू कामदेव की मञ्जरी है और वह युवक भृंग है जो तेरे ही योग्य है। तो आप दोनों की अन्य क्या प्रशंसा की जाये ? किन्तु हम यही चाहते हैं कि भाग्यों से मनुष्य जाति के माणिक्यरूप आप दोनों के योग्य समागम से विधाता का विचित्र रचना के संकल्प वाला शिल्पप्रवास सफल हो।

किं बहुना किमधिकेन, सा त्वं मन्मथमञ्जरी कन्दर्पवल्लरी विद्यसे, स च युवा तरुणस्तवैवोचितो योग्यो भृङ्गश्चञ्चरीकोऽस्ति । तद् भवतोर्युवयोः किमन्यत् किमितरत् श्लाघ्यं प्रशस्यम् किन्तु तथाप्येतदपरम् आशास्महेऽभिलषामो यद् भाग्यैर्भागधेयैः, मानुष्यमाणिक्ययोर्मनुजरत्नयोः युवयोर्भवतोः योग्यसमागमेनानुरूपमेलनेन विधेर्विधातुः विचित्ररचनाया अपूर्वनिर्मितेः संकल्पो यत्र तादृशः शिल्पश्रमो निर्माणप्रयासः श्रेयानस्तु प्रशस्यतरः सफलो वा भवतु । अत्र रूपकसमालङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावत्वात् संकरः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

तन्न जाने स कः सुकृती तेन तस्याः श्रवणादेवोल्लसद्बहुलपुदकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः । न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः । केवलमदृष्टपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुकातिरेकास्तमितसमस्तान्यव्यापारेणैकाग्रतया ग्रहनिरुद्धेनेवान्धेनेव मूकेनेव मूर्च्छितेनेव विषविघूर्णितेनेवस्ताभस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्या तेमाध्वनीनेन सह तत्रैव न्यग्रोधतरुतले सुचिरमासितमासीत् ।

तो न जाने वह कौन पुण्यशाली है जिसका पथिक ने श्रवणमात्र से उत्पन्न होते हुए प्रचुर पुलकांकुरों से उभरे अंशुक वाली उस राजपुत्री के सम्मुख विस्तार से इस प्रकार वर्णन किया था। और न ही विस्मय से विस्मृत विवेक वाले मैंने भी यह कौन है, किसकी पुत्री है, कहाँ से आई है, कहाँ जा रही है इत्यादि प्रश्नों का आग्रह किया। केवल पहले कभी न देखे रूप न उत्पन्न आकस्मिक कौतुकाधिक्य के कारण मेरे सब अन्य व्यापार बन्द हो गये और मैं एकाग्रता से पकड़कर रोके हुए के समान, अन्धे के समान, गूंगे के समान, मूर्छित के समान,

विष से भ्रान्त के समान, चेष्टा–विघात से स्तब्ध हुए के समान, उसके चले जाने पर भी उस पथिक के साथ उसी वटवृक्ष के नीचे देर तक बैठा रहा।

तन्न जाने नावधारयामि, स कः सुकृति पुण्यवान् तेन पान्थेन श्रवणादेवाकर्णनादेव उल्लसन् उद्गच्छन् बहुलः प्रचुरो यः पुलकाङ्कुरो रोमाञ्चप्ररोहस्तेन उत्तम्भितमुद्गतम् अंशुक वसनं यस्यातथाविधायाः तस्या भूपालपुत्रिकायाः, पुरः संमुखे विस्तरेण विस्तारेणेव वर्णितः स्तुतः। न च विस्मयेन आश्चर्येण विस्मृतो विस्मृतिं नीतो विवेकः कर्तव्याकर्तव्यज्ञानं येन तेन मयापि केयं किंनाम्नीयं. कस्येयं कस्य महानुभावस्य पुत्रीयं कुत्र क्व, कुतो वा कस्माद् वा स्थानात् प्रस्थिता प्रचलितः इति प्रश्नाग्रहः पृच्छाहठः कृतो विहितः। केवलम् अदृष्टपूर्वेणावीक्षितचरेण रूपेण सौन्दर्येण उत्पन्नो जातो य आकस्मिकोऽकस्मादुद्भूतः कौतुकातिरेकः कुतूहलातिशयस्तेन अस्तमिताः शान्ताः समस्ता अखिला अन्यव्यापारा इतरकार्याणि यस्य तेन, एकाग्रतया दत्तावधानतया ग्रहनिरुद्धेनेव गृहीत्वा ग्रहप्रभावद्वारा वा वारितप्रसरेणेव, अन्धेनेव नेत्रहीनेनेव मूकेनेव वाक्शक्तिरहितेनेव, मूढेनेव मोहापन्नेनेव, मूर्च्छितेनेव निश्चेतनेनेव विषविघूर्णितेनेव गरलभ्रान्तेनेव स्ताभस्तम्भितेनेव स्तोभश्चेष्टाविघातस्तेन स्तम्भितेन गतिरहितेनेव, गतायां प्रयातायामपि तस्यां भूपालपुत्रिकायां, तेनाध्वनीनेन पथिकेन (अध्वानमलं गामीत्यध्वनोनः 'अध्वनो यत्खौ' इति ख प्रत्ययः) तत्रैव न्यग्रोधतरुतले वटवृक्षस्याधस्तात् सुचिरं बहुकालपर्यन्तम् आसितम् उपविष्टमासीत्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

तदायुष्मन्नेष कथितः स्ववृत्तान्तः। तस्यां दिशि तया सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेनदृष्टं यद् द्रष्टव्यम्। अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म। जाते कृतार्थे चक्षुषी। सम्पन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः। तदिदानीं किमन्यत्। अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्' इत्यभिधाय व्यरंसीत्।

तो, हे आयुष्मन्, यह मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया। उस दिशा में सकल जगत् के लिए चाँदनी रूप उस राजपुत्री के, और इस देश में समस्त जनों के नेत्ररूपी कुमुदों के लिए चन्द्ररूप आपके दर्शन कर, जो द्रष्टव्य था वह मैंने देख

लया। और मेरा जन्म श्लाध्य हो गया, चक्षु कृतार्थ हो गये। परिभ्रमण का श्रम सफल हो गया। तो अब और क्या, मुझे अपने देश को जाने की अनुमति दीजिये। यह कहकर चुप हो गया।

तद् आयुष्मन् हे जैवातृक, एष कथितः श्रावितः स्ववृत्तान्तो निजोदन्तः। स्या दक्षिणस्यां दिशि ककुभि सकलजगतः समस्तलोकस्य ज्योत्स्नया चन्द्रिकारूपया तया भूपालपुत्रिकया, अस्मिन्नपि देशे निःशेषःजनानां समस्तलोकानां नयनानि लोचनान्येव कुमुदानि करवाणि तेषामिन्दुना चन्द्रेण त्वया दृष्टेन साक्षात्कृतेन दृष्टं साक्षात्कृत यद्द्रष्टव्यं साक्षात्कर्तुं योग्यम्। अभूदजायत् च मे श्लाध्यं प्रशंसनीय जन्म जननम्। जाते भूते कृतार्थे कृतकृत्ये चक्षुषी नेत्रे। सम्पन्नो जातः सफलः फलवान् परिभ्रमणप्रयासः पर्यटनश्रमः। तद् इदानीं सम्प्रति किमन्यत् किमपरम्। अनुमन्यस्वानुजानीहि स्वविषयगमनाय निजदेशप्रस्थानाय माम्। इत्यभिधाय व्यरंसीत् तूर्ष्णीं बभूव। सकलजगज्ज्योत्स्नया, नयनकुमुदेन्दुनेत्यत्र रूपकम्।

राज्ञश्चिन्ता

राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान्—

स्त्रीमाणिक्यमहाकरं स विषयः पान्थोऽप्ययं तथ्यवाग्
व्यापारोऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तत्किं न संभाव्यते।
किं त्वाश्चर्यमदृष्टरूपविभवाप्याकर्ण्यमाना सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुरुते नाम्नैव निम्नं मनः॥६१।

राजा भी यह सुनकर सोचने लगा—"वह देश स्त्रीरूप माणिक्यों की खान है, यह पथिक भी सत्यवक्ता है, विधाता का व्यापार भी विचित्र वस्तुओं की रचना करने वाला है, तो क्या सम्भव नहीं है, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि पहले कभी उसका रूप वैभव नहीं देखा तो भी 'सुन्दरी है' ऐसा सुनी जाती हुई वह अपने नाम से ही मुझ उन्नत चित्त वाले के भी मन को वशीभूत कर रही है।

राजापि नृपोऽप्येतदाकर्ण्य निशम्य चिन्तितवान् व्यचारयत्—स विषयो देशो विदर्भः स्त्रियः सुन्दरवनिता एव माणिक्यानि रत्नानि तेषां महाकरः खनि-

र्वर्तते । अयं पान्थोऽप्येष पथिकोऽपि तथ्यावाक् सत्यभाषी विद्यते । विधेर्विधातुः व्यापारोऽपि कर्मापि विचित्राऽद्भुता रचना सृष्टिर्यत्र तादृशोऽस्ति । तत् तस्मात् किं न संभवम् ? किंतु परन्तु, आश्चर्यमद्भुतमिदं यद् अदृष्टोऽनवलोकितो रूपविभवः सौन्दर्यवैभव यस्यास्तथाविधापि 'कान्तेति कान्तिमतीति' आकर्ण्यमाना सती पथिकमुखाच्छ्रूयमाणः सती सा भूपालपुत्रिका नाम्नैव नामधेयमात्रेणैव उन्नतचेतसो धीरमनसोऽपि मम मनो मानस निम्नं कुरुतेऽधीरं विदधाति। रूपविभवदर्शनरूपहेत्वभावेऽपि मनोनिम्नत्वकरणरूकार्यवर्णनाद् विभावनालंकारः। अत्र हेतुः कान्ता यद्यपि विद्यते, किन्तु सा श्रुतैव न तु दृष्टेति हेतोरसमग्रत्वम् । असमग्रहेतुवर्णनेऽपि विभावना भवति, यथोक्त कुवलयानन्दे हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मतेति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

तथा हि—

> नो नेत्राञ्जलिना निपीतमसकृतस्याः स्वरूपामृतं
> नो नामान्वयपल्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः ।
> चित्रं चुम्बति चुम्बकाश्मकमयो यद्वद्बलाद्दूरत-
> स्तद्वत्तर्जितधैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥६२॥

क्योंकि, न तो नेत्ररूप अंजलि से बार-बार उसके रूपामृत का पान किया, न ही उसके वंशरूपी पल्लव को मैंने श्रोत्राभूषण बनाया, तो भी आश्चर्य है, जैसे लोहा बलात् दूर से चुम्बक मणि को जाकर चूम लेता है वैसे ही मेरा मन अधीर होकर उसके प्रति दौड़ रहा है ।

तथा हि, मया नेत्राञ्जलिना लोचनरूपपाणिपुटेन असकृद् बहुशस्तस्याः कन्यकायाः स्वरूपामृत सौन्दर्यपीयूषं नो निपीतं नास्वादितम्, नो नाम नैव चान्वयपल्लवोऽपि वंशकिसलयोऽपि कर्णावतंसीकृतः श्रोत्रालंकारतां नीतः— किं कुल तस्या इत्यपि न श्रुतमित्यर्थः । तथापि चित्रमाश्चर्यं, यद्वद् तथा अयो लोहधातुर्दूरतो दूरात् चुम्बकाश्मकमस्कान्तमणिं चुम्बति स्पृशति, तद्वत् तथा तर्जित तिरस्कृत धैर्यं धीरत्व यस्य तादृशम् एतद् मे मनोऽपि इदं मम चित्तमपि तस्यां धावति तां प्रतिवेगेन गच्छति । अत्रापि बिना हेतुं कार्योत्पत्तिवर्णनाद्

विभावना प्रथमपादे रूपकम्, उत्तरार्धे उपमापि। तेषामङ्गाङ्गिभावसंकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

सोऽयं दुर्लभेष्वनुराग पुंसाम्, अज्वरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं दौःस्थ्यम्, अविषास्वादनमाघूर्णनम् असाध्वसं कम्पनम्, अनात्मविक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाडयत्, अनिन्धन ज्वलनम् अलग्नग्रहमुन्मादनम्, अवात्याघातमुद्भ्रमणम् अमौनं मौक्यम्, अहीनश्रुति बाधिर्यम्, अनष्टदृष्टिकमन्धत्वम्, अस्खलितमनोरथं मनःस्तम्भनम् अमन्त्र आवेशः। सर्वथा नमः सुस्थितजननदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंविधो व्यापारः।

सो यह दुर्लभ वस्तुओं में पुरुषों का अनुराग है, बिना ज्वर का अस्वास्थ्य है, बिना दारिद्र्य के दुर्दशा है, बिना विष खाये शिरोभ्रान्ति है, बिना भय के कम्पन है, बिना अपने को बेचे पराधीनता है; बिना बुढ़ापे के जडता है, बिना अग्नि के जलना है, बिना ग्रहकोप के उन्मत्तता है, बिना चक्रवाताघात के उद्भ्रान्ति है, बिना मौन के मूकता है, बिना कर्णक्षति के बधिरता है, बिना नेत्रनाश के अन्धता है, बिना मनोरथस्खलन के मनःस्तम्भ है, बिना मन्त्र प्रयोग के आवेश है। सर्वथा स्वस्थजन के प्रति दुर्जनता करने वाले कामदेव को नमस्कार है, जिसका यह इस प्रकार का व्यापार है।

सोऽयं दुर्लभेषु दुष्प्राप्यवस्तुषु अनुरागः प्रेम पुंसां पुरुषाणाम्। अज्वर ज्वररूपशरीरतापं विनैव अस्वास्थ्यम् अस्वस्थता। अदौर्गत्यं दारिद्र्य विनैव दौःस्थ्य दुःस्थितिः। अविषास्वादनं गरलसेवनं विनैवाघूर्णन शिरोभ्रान्तिः। असाध्वसं भीति विनैव कम्पन वेपथुः अनात्मविक्रयम् आत्मनो विपण विनैव पारवश्यं पराधीनता। अजरं वार्धक्यं विनैव जाड्यमिन्द्रियाणां जडता। अनिन्धनं काष्ठं विनैव ज्वलनं भस्मीभावः। अलग्नग्रहं ग्रहकोपं विनैव उन्मादनमुन्मत्तता। अवात्याघातं चक्रवातप्रहार विनैव उद्भ्रमणमुद्भ्रान्तिः। अमौनं तूष्णीं भाव विनैव मौक्यं मूकता। अहीनश्रुति कर्णक्षति विनैव बाधिर्यं बद्धकर्णता। अनष्टदृष्टिक नेत्रदोषं विनैव अन्धत्वं दर्शनासमर्थत्वम्। अस्खलितमनोरथम् इच्छानिरोधं विनैव मनःस्तम्भनं चेतः स्तब्धत्वम्। अमन्त्रः सर्वथा मन्त्रप्रयोगं विनैवावेशो भूताद्यावेशनम्। अत्र सर्वत्र विभावनालंकारः।

सर्वप्रकारेण नमः प्रणामोऽस्तु, सुस्थितजनेषु स्वस्थचित्तमनुष्येषु दुर्जनाय दुष्टाय मनोजन्मने कन्दर्पाय यस्यायमेवंविधः इत्थंप्रकारो व्यापारः कार्यम् ।

पथिक-विसर्जनम्

इत्यवधारयन्नवतार्य सर्वाङ्गेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात् । तैस्तैरालापैः स्थित्वा च कंचित्समयमिममथ यथाप्रस्थितं पान्थं कथमपि प्रेषयामास । स्वयमपि तत्कालान्तरालमिलितैर्नक्षत्रैरिव साद्र्र मृगशिरोहस्तैः सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवहिभिः पापर्द्धिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा निजावासमयासीत् ।

यह विचारते हुए सब अंगों से आभूषण उतार कर दयापूर्वक उसे दे दिये और उन-उन वार्तालापों के साथ कुछ समय ठहर कर, फिर प्रयाणाभिमुख इस पथिक को किसी प्रकार विदा किया । स्वयं भी उस समय के बीच में आकर मिले हुए शिकारी परिजनों से अनुसरण किया जाता हुआ राजा अपने निवास स्थान को चला गया । वे शिकारी (खून, से) आर्द्र मृगशिरों को हाथों में लिये थे, तथा कान समेत चीतों का खाल एवं अन्य सामान उठाये हुए थे, जैसे नक्षत्र, आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्त नामक तारापुंजों के साथ रहते हैं और श्रवण, चित्रा व कृत्तिका नक्षत्रों के समुदाय को धारण करते हैं ।

इत्यवधारयन् निश्चिन्वन् सर्वाङ्गेभ्यः सकलाऽवयवेभ्यो भूषणान्यलंकारान्, अवतार्य परित्यज्य तस्मै पथिकाय सदयं संकरुणमदात् समर्पितवान् । तैस्तैरनेकविधैरालापैर्भाषणैः कञ्चित् समयं कञ्चित्कालं स्थित्वा समुपविश्य च, अथ तदनन्तरं यथाप्रस्थितं प्रयाणाभिमुखम् इमं पान्थं पथिकं कथमपि महता काठिन्येन प्रेषयामास विससर्ज । स्वयमप्यात्मनापि तत्कालान्तराले तत्समयव्यवधाने मिलितैः सगतैः नक्षत्रैरिव तारकाभिरिव साद्रौणि स्रवद्रुधिराणि मृगशिरांसि हरिणशीर्षाणि हस्तेषु करेषु येषां तैः (नक्षत्र पक्षे—आर्द्रा मृगशिरा हस्तश्च ये नक्षत्रविशेषास्तैः सह विद्यमानैः) सश्रवणो सकर्णो चित्रकृतिको चित्रकायत्वचम् उपस्करं मृगयोपयोगिणसंभारं च वहन्तीति तैः नक्षत्र पक्षे—सश्रवणचित्रः श्रवण-चित्रनक्षत्रसहितो यः कृत्तिकोपस्करः कृतिकासमूहस्त वहन्तीति तैः), [उपस्करः इत्यत्र 'समवाये च' इति समवायेऽर्थे सुट् ।] पापर्द्धि-

कपरिजनैर्मृगयालुपरिवारैः अनुगम्यमानोऽनुस्त्रियमाणो राजा नलो निजावास स्वनिवासभुवम् अयासीदगमत् । अत्र श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारः ।

राजदशा-वर्णनम्

ततः प्रभृति च ।

हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरित्तीरे तरुणामध-
स्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।
धीरस्यापि मनाङ् मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-
ल्लग्नोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥६३॥

और तब से लेकर, मनोहर उद्यान की वायु से तरंङ्गित नदी के तट पर, तरुओं के नीचे, कमलिनियों के अनेक नवकिसलयों से परिपूर्ण पर्यङ्क पर भी खिन्न आत्मा वाले धीर भी उस (राजा) के मन रूपी झोंपड़ी के कोने में बलात् लगी हुई कामाग्नि उसके परवश अंगों से जान ली जाती थी।

ततः प्रभृति च तदारभ्य च—हृद्योद्यानं मनोहरोपवनयुक्तं मरुता वायुना तरङ्गितायाः संजाततरङ्गायाः सरितो नद्या यत् तीर तटं तस्मिन्, तरुणामधो विटपिनामधःप्रदेशे, अनल्पाः प्रचुरा याः सरोजिन्यः कमलिन्यस्तासां नवदलानि नूतनपत्राणि तत्प्राये तत्प्रचुरे तल्पेऽपि शयनेऽपि खिन्नात्मनो विरहाग्निप्रीडया-ऽशान्तस्य धीरस्यापि धैर्यशालिनोऽप्यस्य नलस्य परवशैरङ्गैः पराधीनैरवयवैर्मनागीषद्, मनो मानसमेव तृणकुटी पर्णशाला तस्याः कोणान्तराले एकदेशे, अनङ्गानलः कामवह्निर्बलाद् बलपूर्वक लग्नः संपृक्त इति विभाव्यते ज्ञायते। अत्र सरित्तीरतरुतलादयो वियोगिमनोविनोदहेतवोऽपि तस्य मनसो विनोदं न कुर्वन्तीति सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिः। एवं धीरत्वरूपहेतुमद्भावेऽप्यङ्गानि स्वस्थानि नेत्यपि विशेषोक्तिः। परवशैरङ्गैरनङ्गानलो लग्नो विभाव्यते इत्यनुमानम्। मनसि तृणकुटीत्वापोऽनङ्गे चानलत्वारोपस्तेन च नलस्य दाहोत्पत्तिवर्णनाद परिणामः। सर्वेषां संकरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

एवमस्य

पुनरपि तदभिज्ञान् पृच्छतः पान्थसार्थान्,
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण।

हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्कमौलेः
मंदनमदनिवासा वासराः प्रावृषेण्याः ॥६४॥

इस प्रकार, फिर भी प्रत्येक मार्ग में उस (दमयन्ती) के वृत्तान्त से परिचित पथिकों से (उसका समाचार) पूछते हुए, शिवजी के चरणकमल-युगल की मुद्रा से अंकित मौलि वाले उस राजा के, कामदेव के मद से युक्त बरसात के दिन व्यतीत होने लगे।

एवमस्य पुनरपि भूयोऽपि प्रतिपथं प्रतिवर्त्म तदभिज्ञान् दमयन्तीवृत्तान्तज्ञान् पान्थसार्थान् पथिकवर्यान् पृच्छतो दमयन्तीविषयकप्रश्नान् कुर्वतः, हरस्य शङ्करस्य यत् चरणसरोजद्वन्द्वं पादारविन्दयुगलं तस्य मुद्राङ्को मुद्राचिह्नं मौली मस्तके यस्य तस्य यूनस्तरुणस्य नलस्य, क्रमेणैकैकशो, मदनमदस्य कन्दर्पोन्मादस्य निवासः स्थितिर्येषु तादृशाः प्रावृषेण्या वार्षिका वासरा दिवसा यान्ति व्यतियन्ति। प्रावृषेण्या इत्यत्र 'प्रावृष एण्यः' इति प्रावृष्शब्दादेण्य प्रत्ययः। चरणः सरोजमिवेत्युपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम्।

इति श्रीमन्महाकवित्रिविक्रमभट्टविरचिते नलचम्पूकाव्ये
हिन्दी-संस्कृत-टीकायां प्रथमोच्छ्वासः समाप्तः।
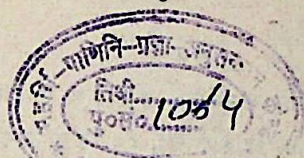
प्रयुक्त छन्दों के लक्षण

१. अनुष्टुप्—"श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।" चारों चरणों में ८–८ अक्षर होते हैं । प्रत्येक चरण में पाँचवां अक्षर लघु तथा छठा अक्षर गुरु होता है, सातवां अक्षर द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में लघु, किन्तु प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। शेष अक्षरों में गुरु-लघु का कोई नियम नहीं है। देखें, श्लोक ३-१४, १६-१८, २०–२८, ३१, ३३, ३६, ४२, ५६ ।

२. आर्या—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।" यह मात्रिक छन्द है। प्रथम और तृतीय चरण में १२ मात्रायें, द्वितीय में १८ मात्रायें तथा चतुर्थ में १५ मात्रायें होती हैं। मात्रा गिनने का यह नियम है कि लघु अक्षर की एक मात्रा तथा गुरु की दो मात्रायें मानी जाती हैं। लघु अक्षर भी गुरु माना जाता है। यदि वह सानुस्वार हो, विसर्गान्त हो या उसके परे संयुताक्षर हो। पाद के अन्त का लघु वर्ण भी आवश्यकतानुसार गुरु समझ लिया जाता है। देखें, श्लोक २६,३०।

३. उपजाति—"(स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।) अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजो पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।।" इन्द्रवज्रा-तऽऽ ।, तऽऽ ।, ज ।ऽ।, ग ऽ, ग ऽ, उपेन्द्रवज्रा-ज ।ऽ।, त ऽ ऽ ।, ज ।ऽ।, ग ऽ, दोनों में अन्तर केवल यह है कि इन्द्रवज्रा का आदि अक्षर गुरु होता है, उपेन्द्रवज्रा का लघु। इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द बनता है अर्थात् इसमें एक, दो या तीन चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं, शेष उपेन्द्रवज्रा के। एवं उपजाति के निम्न १४ भेद हो जाते हैं। एक चरण इन्द्रवज्रा का, तीन उपेन्द्रवज्रा के, इसके चार भेद–इ उ उ उ, उ इ उ उ, उ उ इ उ, उ उ उ इ । दोनों के दो-दो चरणः इसके छः भेद—इ इ उ उ, उ उ इ इ, इ उ इ उ, उ इ उ इ, इ उ उ इ, उ इ इ उ । तीन चरण इन्द्रवज्रा के, एक उपेन्द्रवज्रा का,

इसके चार भेद—इ इ इ उ, उ इ इ इ, इ उ इ इ, इ इ उ इ। देखें, श्लोक ३७, (इ इ उ उ), ३८ (इ इ उ इ)।

४. द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ। न ।।।, भ ऽ।।, भ ऽ।।, र ऽ।ऽ, कुल १२ अक्षर देखें श्लोक ४३।

५. मन्दाक्रान्ता—मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद् गुरु चेत्। म ऽऽऽ, भ ऽ।।, न ।।।, त ऽऽ, त ऽऽ।, ग ऽ, ग ऽ, कुल १७ अक्षर। चार, फिर छः फिर सात पर यति देखें श्लोक १९।

६. मालिनी—न न म य य युतेय मालिनी भोगिलोकैः। न ।।।, न ।।।, म ऽऽऽ, य ।ऽऽ, य ।ऽऽ, कुल १५ अक्षर। आठ, फिर सात पर यति। देखें, श्लोक १, २, ३२, ५०, ५१, ६४।

७. शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्। म ऽऽऽ, स ।।ऽ, ज ।ऽ।, स ।।ऽ, त ऽऽ।, त ऽऽ।, ग ऽ कूल १९ अक्षर। बारह, फिर सात पर यति। देखें, श्लोक १५, ३४, ३५, ४०, ४१, ४४-४८, ५२—५६, ५८, ६०, ६१-६३।

८. शालिनी—शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः। म ऽऽऽ, त ऽऽ।, तऽऽ।, ग ऽ, ग ऽ. कुल ११ अक्षर। चार, फिर सात पर यति। देखें, श्लोक ३९।

९. शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी। य ।ऽऽ, म ऽऽऽ, न ।।।, स ।।ऽ, भ ऽ।।, ल ।, ग ऽ कुल १७ अक्षर। छः, फिर ग्यारह पर यति। देखें, श्लोक ४९।

१० स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा, कीर्तितेयम्। म ऽऽ।, र ऽ।ऽ, भ ऽ।ऽ, न ।।।, य ।ऽऽ, य ।ऽऽ. कुल २१ अक्षर। सात, फिर सात, फिर सात पर यति। देखें, श्लोक ५७।

श्लोकानुक्रमणिका